संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
॥ ऋषि प्रसाद ॥
वर्ष : ११
अंक : ९१
जुलाई २०००
हिन्दी
गुरुपूर्णिमा महोत्सव
१६ जुलाई २०००
हे साधक ! तू अपनी आत्म-महिमा को पहचान।
सुख-दुःख, आकर्षण-विकर्षण से ऊपर उठकर महान् बन।
- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू
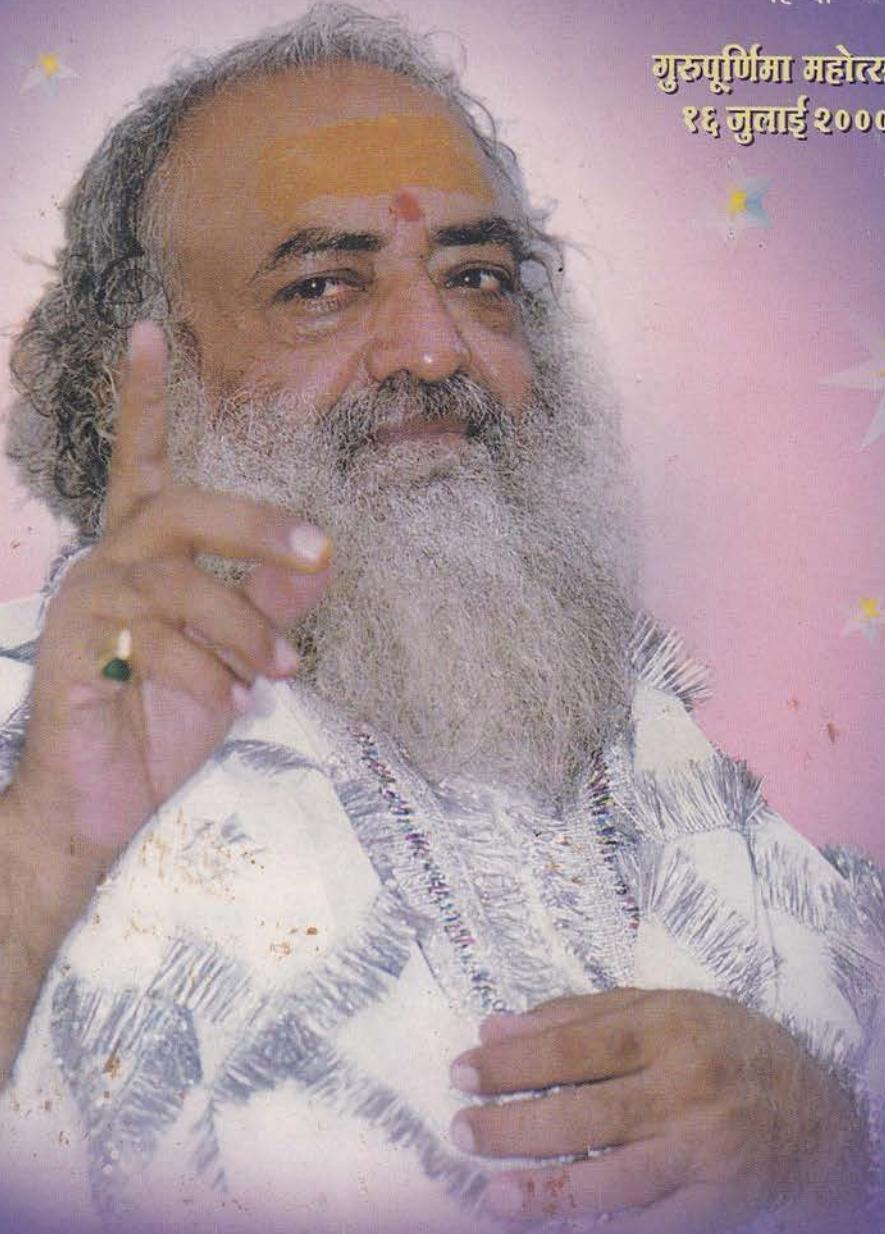
ऋषि प्रसाद

वर्ष : ११
अंक : ९१
९ जुलाई २०००
सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क
भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-
नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)
विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 25
(२) पंचवार्षिक : US $ 100
(३) आजीवन : US $ 250

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग
SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

गुरु पूरे जब भए दइआल।
दुःख बिनसे पूरन भई घाल ॥

जब किसी मनुष्य पर सद्‌गुरु दयालु होते हैं तब उसके नाम-स्मरण की मेहनत सफल हो जाती है और उसके समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं।

गुरु पूरा वडभागी पाईए।
मिलि साधू हरि नामु धिआईए ॥

पूर्ण गुरु की प्राप्ति सद्‌भाग्य से ही होती है और जीव उन्हें पाकर ही हरिनाम का ध्यान करता है।

गुरु बोहियु तारे भव पारि।
गुरुसेवा जम ते छुटकारि॥
अंधकार महि गुर मंत्रु उजारा।
गुरु कै संगि सगल निसतारा॥

गुरु संसारसागर से पार लगानेवाला जहाज हैं। गुरु की सेवा से यमदूतों से छुटकारा मिलता है। अज्ञान के अंधकार में गुरु का उपदेश ही प्रकाश देनेवाला है। गुरु की संगति में सबका उद्धार हो जाता है।

गुरु पूरा पाईए वडभागी।
गुर की सेवा दूखु न लागी ॥
गुर का सबदु न मेटै कोइ।
गुरु नानकु नानकु हरि सोइ ॥

उच्च कर्मों से सच्चे गुरु की प्राप्ति होती है। गुरु की सेवा करने से कोई दुःख नहीं लगता। गुरु के वचनों को कोई नहीं मिटा सकता। गुरु नानक कहते हैं कि गुरु ही परमेश्वर हैं, दोनों अभेद हैं।

गुर की मूरति मन महि धिआनु।
गुर कै सबदि मंत्रु मनु मानु॥
गुर के चरन रिदै लै धारउ।
गुरु पारब्रह्मु सदा नमसकारउ॥

हे जीव! तुम सदैव गुरु के (ज्योति) स्वरूप का ध्यान मन में करो, गुरु के बताये उपदेशों पर आचरण करो, गुरु के चरणों को हृदय में धारण करो, क्योंकि गुरु परब्रह्म हैं, इसलिये सदा उन्हें प्रणाम करो।

मत को भरमि भुलै संसारि।
गुर बिनु कोइ न उतरसि पारि॥

संसार में कोई इस भ्रम में न रहे। गुरु के बिना किसीको मुक्ति नहीं मिलती अर्थात् ऐ लोकवासियों! याद रखो, मुक्ति का एकमात्र आधार गुरु हैं।

भूले कउ गुरि मारगि पाइआ।
अवर तिआगि हरि भगती लाइआ॥
जनम मरन की त्रास मिटाई।
गुर पूरे की बेअंत वडाई॥

पथभ्रष्ट जीव को गुरु ही राह दिखाते हैं। द्वैत के चक्कर से निकालकर गुरु ही जीव को हरिचरणों में प्रवृत्त करते हैं। गुरु जीव के जन्म-मरण के भय को दूर कर देते हैं, यही सच्चे गुरु की वास्तविक महानता है।

गुरप्रसादि ऊरध कमल बिगास।
अंधकार महि भइआ प्रगास॥
जिनि कीआ सो गुर ते जानिआ।
गुर किरपा ते मुगध मनु मानिआ॥

गुरु की कृपा से ही हृदयरूपी कमल, जो पहले उलटा था, अब सीधा होकर खिल उठता है, जिससे अज्ञान के अंधकार में प्रकाश हो जाता है। जिस परमात्मा ने यह सृष्टि बनाई है, उसकी जानकारी गुरु से ही मिल सकती है। यदि गुरुकृपा हो जाये तो मूर्ख, गँवार के मन में भी परमात्मा प्रगट हो जाते हैं।

गुरु करता गुरु करणै जोगु।
गुरु परमेसरु है भी होगु॥
कहु नानक प्रभि इहै जनाई।
बिनु गुर मुकति न पाईऐ भाई॥

गुरु स्वयं कर्त्ता हैं, करने में समर्थ हैं। गुरु स्वयं परमेश्वर हैं और भविष्य में भी उनमें परम शक्तियों का स्थान रहेगा। गुरु नानक कहते हैं कि हमने तो यही समझा है कि गुरु के बिना किसीकी मुक्ति संभव नहीं होती।

*

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई॥

(श्रीरामचरित० उत्तर० : ९२.३)

'एतत्सर्वं गुरोर्भक्त्या...'

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

शास्त्रों के रचयिता वेदव्यासजी महाराज ने कहा है :

''काम को जीतना हो तो बीमार को देखो अथवा मन-ही-मन कल्पना करो कि शरीर की चमड़ी हट जाये तो अंदर कौन-सा मसाला भरा है। लोभ को जीतना हो तो दान करो। क्रोध को जीतना हो तो क्षमा का गुण ले आओ। मोह को जीतना हो तो स्मशान में जाकर देखो कि आखिर कोई किसीका नहीं होता। अहंकार को जीतना हो तो जिस बात का अहंकार हो- धन का, सत्ता का, सौन्दर्य का इत्यादि... उसमें अपने से बड़ों को देखो। इस प्रकार एक-एक दोष पर विजय प्राप्त करने के अलग-अलग उपाय हैं लेकिन यदि मनुष्य इन सब दोषों को एक साथ जीतना चाहता हो तो उसका एकमात्र उत्तम उपाय है कि वह सच्चे सद्गुरु में भक्तिभाव करे।''

एतत्सर्वं गुरोर्भक्त्या...

पत्थर को भगवान मानना बड़ा आसान है क्योंकि पत्थर की मूर्ति तुम्हें टोकती नहीं है परन्तु भगवान के अवतारस्वरूप संत को, गुरु को भगवान मानना बड़ा कठिन है क्योंकि,

सद्गुरु मेरा शूरमा, करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का, हरे भरम की कोट॥

लाखों-करोड़ों व्यापारी मिल जायेंगे, लाखों-लाखों पंडित मिल जायेंगे, सैकड़ों-हजारों गुरु मिल जायेंगे परंतु सद्गुरु तो कभी-कभी, कहीं-कहीं मिलते हैं और ऐसे सद्गुरु की शरण में जाकर पूर्ण श्रद्धा रखनेवाले कोई-कोई विरले होते हैं।

सद्गुरु के पास जानेवालों में भी शुरू-शुरू में तो इतनी श्रद्धा नहीं होती, ऊपर-ऊपर से थोड़ा फायदा उठाकर मन से ही गुरु मान लेते हैं। फिर कभी भाग्य जोर पकड़ता है तब गुरु से दीक्षा लेते हैं। बाद में भी कभी अपने मन के विरुद्ध बात दिखाई दी तो कहते हैं कि : 'गुरुजी को ऐसा नहीं करना चाहिए... वैसा नहीं करना चाहिए...' गुरु एक और शिष्य अनेक। लाखों शिष्यों के लाखों मन, उनकी लाखों कल्पनाएँ होती हैं। सब सोचते हैं : 'गुरु को ऐसा करना चाहिए... वैसा करना चाहिए...' मानों, हम अपने-अपने ढाँचे में गुरु को ढालना चाहते हैं अथवा देखना चाहते हैं।

शिष्य नश्वर देह को 'मैं' मानता है और जगत को सत्य मानता है जबकि सद्गुरु न देह को अपना मानते हैं न ही जगत को सत्य। ऐसा भी नहीं है कि गुरु एक हैं तो सब शिष्य भी एक-से होते हैं। उनमें से भी कोई नर्क से आया है तो कोई स्वर्ग से आया है। सबके संस्कार अलग-अलग होते हैं, विचार अलग-अलग होते हैं।

उनमें आपसी मतभेद रहता है, मत-मतांतर रहता है। घर में छः लोग होते हैं तब भी मत-मतांतर होते हैं तो लाखों शिष्यों के बीच मत-मतांतर रहे यह स्वाभाविक ही है।

वे सब अपनी-अपनी मति से गुरु को तौलते रहते हैं, गुरु के व्यवहार को मापते रहते हैं। **इन सबको सहते हुए, सँभालते हुए, समझाते हुए जो अपने पथ पर चलते हैं और लाखों लोगों को भी ले जाते हैं यह किसी साधारण व्यक्ति का काम नहीं है। हाँ-हाँ सबकी करना किन्तु अपनी गली न भूलना... अपने-आपमें डटे रहना यह कोई मजाक की बात नहीं है।**

घर में दो-तीन बच्चों के होने पर ही माँ-बाप परेशान हो जाते हैं और तंग आकर उनकी पिटाई कर देते हैं तो जो लाखों-लाखों शिष्यों के हृदयों को एक ही धागे में बाँधकर यात्रा करवाते हैं वे सद्‌गुरु कितने करुणासागर होंगे ! उनमें कितना धैर्य, आत्मबल और सामर्थ्य होगा !! **स्नेह की वह रज्जू कितनी मजबूत होगी !!! परहित का हौसला उनका कितना बुलंद होगा !!!!**

गुरु धोबी शिष्य कपड़ा, साबुन सर्जनहार ।
सुरत शिला पर बैठकर, निकले मैल अपार ॥

हम लोगों के जन्म-जन्मांतर के अपने-अपने कर्म हैं । किसीको धन का आकर्षण है तो किसीको सत्ता का, किसीको प्रसिद्धि का आकर्षण है तो किसीको सौन्दर्य का, किसीकी कोई वासना है तो किसीकी कोई मान्यता... न जाने कितना-कितना कचरा भरा पड़ा है ! ऐसे लोगों की कितनी जिम्मेदारी उठानी पड़ती है गुरु को ! ऐसे शिष्यों के कल्याण के लिये भी गुरु अगर तैयार रहते हैं तो उनके हृदय की कितनी विशालता होगी ! उनका हृदय कितने स्नेह से भरा होगा !!

गुरु का स्नेह और उनकी करुणा न हो तो एक भी शिष्य टिक नहीं सकता क्योंकि शिष्य नश्वर देह में जीता है । उसे जो दिखता है उससे गुरु को बिल्कुल निराला दिखता है । फिर भी गुरु-शिष्य का संबंध बना रहता है तो गुरु की करुणा और शिष्य की श्रद्धा की डोर से ही ।

शिष्य जगत को सत्य मानता है, देह को 'मैं' मानता है और भगवान को कहीं और मानता है जबकि सद्‌गुरु जगत को मिथ्या जानते हैं, देह को नश्वर मानते हैं और भगवान को अपने से तनिक भी दूर नहीं मानते । दोनों की समझ बिल्कुल भिन्न है । गुरु का अनुभव और शिष्य की मान्यता दोनों में पूर्व-पश्चिम का संबंध है । फिर भी गुरु-शिष्य परंपरा चली आ रही है क्योंकि शिष्य की थोड़ी पुण्याई से और गुरुमंत्र के प्रभाव से श्रद्धा का धागा टूटते-टूटते फिर सँध जाता है और सद्‌गुरु उसे माफ कर अपना लेते हैं जिससे शिष्य पतन की खाई में गिरने से बच जाता है ।

रामकृष्ण परमहंस जैसे सद्‌गुरु में नरेन्द्र (स्वामी विवेकानंद) जैसे शिष्य की भी श्रद्धा एक बार, दो बार, चार बार क्या सात-सात बार अश्रद्धा में बदल गयी थी लेकिन कुछ शिष्य के पुरुषार्थ से और कुछ सद्‌गुरु की कृपा से गुरु-शिष्य का नाता बना रहा और आखिर में काम बन गया ।

श्री वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! जो गुरु में सामर्थ्य चाहिए वह मुझमें है । मुझे अपनी आत्मा हस्तामलकवत् भासती है । जैसे हाथ में आँवला होने पर किसीसे पूछना नहीं पड़ता कि हाथ में आँवला है कि नहीं, ऐसे ही मुझे परमात्म-तत्त्व का अनुभव हो गया है । ऐसा मेरा कोई शिष्य नहीं है जिसको मैंने आनंदित न किया हो । मैं समर्थ गुरु हूँ और तुम भी सत्पात्र शिष्य हो । शिष्य में जो सद्‌गुण होने चाहिए- संयम, सदाचार, तत्परता और गुरुभक्ति वह तुममें है और गुरु में जो सामर्थ्य होने चाहिए- ब्रह्मनिष्ठा, करुणा और अहैतुकी कृपा बरसाने का भाव वह मुझमें है । हे रामजी ! काम बन जायेगा ।''

सद्‌गुरु का पद बहुत ही जिम्मेदारी का पद है । स्वामी विवेकानंद कहते थे कि : ''संसार के दल-दल में पड़े रहनेवालों की अपेक्षा ईमानदारी से भगवान के रास्ते पर चलनेवाले की स्थिति ऊँची है । उससे भी ऊँची अवस्था है भगवद्-स्वरूप की जिज्ञासा... तत्त्वरूप से भगवान में और हमारे में क्या भेद है इसकी जिज्ञासा । उससे भी दुर्लभ है भगवद्-तत्त्व का ज्ञान होना, भगवद्-साक्षात्कार होना । इससे भी अत्यंत ऊँची एवं दुर्लभ स्थिति है एकान्त में जीवन्मुक्त होकर रहना । इससे भी विलक्षण व आश्चर्यकारक बात तो यह है कि ब्राह्मी स्थिति की ऊँचाइयों को छूने के बाद भी हजारों-लाखों लोगों को उन ऊँचाइयों की तरफ अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहित करना, ले जाना । ईश्वर-प्राप्ति,

जीवन्मुक्ति प्राप्त करने से भी यह विलक्षण विशालता-करुणा दुर्लभ है... अत्यंत कठिन आश्चर्यमयी है। ऐसे पुरुष धरती पर कभी-कभार, कहीं-कहीं होते हैं।''

धन्य है ऐसे सद्गुरुओं को, जो अपनी आत्मानंद की मस्ती छोड़कर संसार में भटकते हुए जीवों का उद्धार करने में लगे हैं !

सृष्टि बनाने का और प्रलय करने का सामर्थ्य आ जाये फिर भी सद्गुरु की कृपा के बिना देह की परिच्छिन्नता नहीं मिटती । अंतःकरण में परिच्छिन्न चैतन्य और व्यापक चैतन्य की अभिन्नता का अनुभव जब तक नहीं होता तब तक हमारा काम अधूरा ही रहता है।

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई ।
जौं बिरंचि संकर सम होई ॥

(श्रीरामचरित० उत्तर० : ९२.३)

ज्यों-ज्यों शिष्य भीतर से समर्पित होता जाता है, त्यों-त्यों गुरुकृपा, ईश्वरकृपा उसके हृदय में विशेष रूप से उतरती जाती है। शिष्य जितने-जितने अहोभाव से गुरु को याद करता है, उतना-उतना उसके हृदय का कब्जा गुरु लेते जाते हैं और शिष्य शाहंशाह होता जाता है। बीज जितना मिटता है वृक्ष उतना ही पनपता है। ऐसे ही जीवन में जीवत्व जितना मिटता है उतना ही अंदर का शिवत्व प्रगट होने लगता है।

बारिश के दिन में कोई भीगता हुआ हमारे दरवाजे पर आकर कहे कि : 'भाई ! दरवाजा खोलिये।' ...तो हम उसे अपने घर में आश्रय देते हैं। वह आदमी पहले खड़ा रहता है... फिर धीरे-से बैठ जाता है... कुछ देर के बाद पैर पसारता है... फिर तकिया लेकर आराम करने लगता है। फिर जब उससे कहा जाय कि : 'अब जाइये।' तब वह कहे कि : 'मैं क्यों जाऊँ ? यह घर तो मेरा है।' ऐसे ही गुरुदीक्षा के द्वारा गुरुकृपा हमारे हृदयरूपी द्वार पर आती है। कैसे भी करके हम हृदय का द्वार खोल देते हैं और गुरुकृपा किसी कोने में बैठ जाती है। फिर धीरे-धीरे अपने पैर पसारती है और हमारे अहं को कान पकड़कर बाहर निकाल देती है।

घर के मालिक के लिए अपने एक किरायेदार को घर से निकालना आसान नहीं है तो जन्म-जन्मांतरों के संस्कार से बने शरीररूपी घर से अहं को निकालना यह कोई मजाक की बात है क्या ? ...किन्तु सद्गुरु अपने शिष्य के अहं को निकालने के लिये बड़ा परिश्रम करते हैं क्योंकि वे उसे परम तत्त्व का दीदार कराना चाहते हैं और परम तत्त्व का साक्षात्कार अहं के मिटे बिना नहीं हो सकता।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहीं।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाहीं ॥

कैसी करुणा है उन सद्गुरुओं की ! आज गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर हम उन सभी सद्गुरुओं को प्रणाम करते हैं... नमन करते हैं !

हम व्यास भगवान को प्रणाम करते हैं ! तमाम शरीरों में साकार रूपों में जो आये हैं, आ गये हैं और आयेंगे उन सभी ब्रह्मज्ञानियों को इस व्यासपूर्णिमा के पर्व पर हम फिर-फिर से नमन करते हैं !

भगवान चाहे पत्ते के रूप में हों चाहे व्यासजी के रूप में, चाहे वल्लभाचार्य के रूप में हों या रामानुजाचार्य के रूप में, चाहे आद्य शंकराचार्य के रूप में हों या पतंजलि महाराज के रूप में, और भी अनेक महापुरुषों के रूप में हों, जिनके हृदय में भगवान प्रगट हुए हैं ऐसे सभी ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों को हमारा बार-बार प्रणाम है ! हमारे साधकों के अंतःकरण पर उन सभी की कृपा जल्दी-से-जल्दी बरसे और सारे दोष निकलकर निर्दोष नारायण की लहरें उछलने लगें, ऐसी आसाराम की भावना है।

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ९३ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जुलाई २००० के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

सेवा का रहस्य

अपने निजी स्वार्थ को जीवन का एकमात्र लक्ष्य बनाकर एक संकुचित क्षेत्र के अंदर कोल्हू के बैल की तरह घूमते हुए मानव समाज की वास्तविक उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यकता है 'सेवा' की।

सेवा संकुचित क्षेत्र में फँसे हुए स्वार्थी मानव को विश्वात्मा के साथ एकत्व कराने की एक अनुपम कला है। श्रद्धा से सम्पृक्त सेवा ही धर्म है। स्नेह-संयुक्त सेवा वात्सल्य है। मैत्रीप्रवण सेवा सख्य है। मधुर सेवा शृंगार है। प्रेमयुक्त सेवा ही अमृत है। संयोग में यह रससृष्टि तथा वियोग में हितवृष्टि करती है। सेवा एक ऐसी दृष्टि है जो पाषाणखण्ड में ईश्वर को प्रगट कर सकती है, मृत को अमर बना सकती है। सेवा क्षुद्र अहंकार को मिटाकर ब्रह्मभाव को प्रगट कर देती है। अपने हितैषी के प्रति जो श्रद्धा, विश्वास अथवा सेवा की भावना है, वह उस पर उपकार करने के लिए नहीं है। 'मैं अपनी सेवा के द्वारा अमुक को सुख पहुँचाता हूँ...' यह भावना अहंकार को आभूषण पहनाती है। सेवा दूसरे पर उपकार करने के लिए नहीं अपितु अपने अन्तःकरण की शुद्धि के लिए होती है। सेवा चित्त को गंगाजल के समान निर्मल एवं स्वच्छ बनानेवाली है।

सेवानिष्ठा की परिपक्वता के लिए उसका विषय एक होना आवश्यक है। फिर चाहे माता-पिता हों, गुरु, ईश्वर अथवा समाज हो, सभी में एक ही ईश्वर है। एक की भावना से सेवा अचल हो जाती है और वेदान्त के अनुसार अचल वस्तु ब्रह्म से पृथक् नहीं होती। चल ही माया है, अचल नहीं। साधना में निष्ठा की परिपक्वता ही सिद्धि है। यदि सेवा की वृत्ति परिपक्व दशा में शांत हो जायेगी तो वह आत्मा से एकत्व करा देगी और स्वयं भी आत्मस्वरूप हो जायेगी।

सेवा के प्रारंभ में स्व-सुख की वासना उपस्थित हो सकती है परन्तु जब सेवक सेवा के द्वारा सेव्य को प्रसन्न करना चाहता है और सेव्य की प्रसन्नता में स्वयं भी हर्षित होता है तब उसकी स्व-सुख की वासना धीरे-धीरे कम होने लगती है। केवल अपने इष्ट के सुख में सुखी होना उसका स्वभाव बन जाता है और अन्य सुखों की इच्छा निवृत्त होने लगती है। 'मैं अपनी सेवा से किसीको सुख देता हूँ...' यद्यपि यह भावना भी पूर्ण निःस्वार्थता नहीं है परन्तु यह स्वार्थ-निवृत्ति का एक साधन है। अतः प्रारंभिक अवस्था में इसे दोष नहीं माना जा सकता। यह प्रभुप्रेमरूपी महल में पहुँचानेवाली प्रथम सीढ़ी है क्योंकि जिस हृदय में अपने इष्ट को देखना है, रखना है, वहाँ प्रारम्भ में इष्ट के लिए हित की भूमिका का बनना आवश्यक भी है। यह प्रारम्भ है, पूर्णता नहीं। वेदान्त की भाषा में जब तक सेवक का 'मैं' पूर्ण रूप से स्वामी के 'मैं' में विलीन नहीं हो जाता, तब तक सेवा पूर्ण नहीं होती।

सेवा में इष्ट तो एक होता ही है, सेवक भी एक ही होता है। वह सब सेवकों के रूप में स्वयं ही अनेक रूप धारण करके अपने स्वामी की सेवा करता है। अनेक सेवकों के साथ वह सेवा के अनेक प्रकारों को भी अपना ही रूप मानता है। भिन्न दृष्टि होने पर ईर्ष्या का प्रागट्य होता है जो कि सेवा में विष है। सरलता सेवा में अमृत है।

किसी भी कारण किसी के प्रति चित्त में कटुता आ जाने से सेवा भी कटु हो जाती है क्योंकि सेवा शरीर का विषय नहीं अपितु रसमय हृदय का मधुर उल्लास है। सेवा में क्रिया की अपेक्षा भाव की प्रधानता है। भाव की मधुरता से सेवा भी मधुर रहती है। कटुता चाहे किसीके प्रति भी हो परन्तु उसका निवास-वस्तु स्वयं ही अशुद्ध हो जायेगी। अपने अन्तर को शांत व निर्मल रखकर रोम-रोम को रसमय करने का नाम है 'सेवा'।

सेवा में सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है सेवक का लक्ष्य। क्या किसी मनोरथ की पूर्ति, प्रतिष्ठा की आकांक्षा या किसीको वश में करने की इच्छा है ? यदि ऐसा है तो यह सेवा नहीं, स्वार्थ का ताण्डवमात्र है। सेवा का फल न तो स्वर्गादि की प्राप्ति है और न ही भोग-ऐश्वर्य की। सेवा स्वयं एक सर्वोत्तम फल है। सेवा केवल उपाय नहीं अपितु उपेय (प्राप्तव्य) भी है।

जिसके मन में ऐसी कल्पना उठती हो कि : 'मुझे तो सेवा का कोई फल नहीं मिला...' वह सेवा का रहस्य नहीं जानता। उसकी दृष्टि प्राप्त जीवनशक्ति एवं प्रज्ञा के सदुपयोग की ओर न होकर किसी आगन्तुक पदार्थ पर है। यह स्वार्थ का खेल है, सेवा नहीं। सेवा चित्तशुद्धि का साधन होने के साथ-साथ शुद्ध वस्तु का अनुभव भी है।

स्पर्धा सेवा को कलंकित करनेवाला मैल है। सेवा में स्पर्धा का आ जाना, दूसरे को पीछे छोड़ने के लिए स्वयं आगे बढ़ने की इच्छा रखना, दूसरे की सेवा को देखकर ईर्ष्या होना अथवा तो दूसरे को अपनी सेवा में बाधा मान लेना, इनसे सेवा के अंतरंग मर्मस्पर्शी रूप का दर्शन नहीं हो पाता। सेवा चित्त को निर्मल व उज्ज्वल बनाती है। उसमें अनुरोध ही अनुरोध है, विरोध अथवा अवरोध नहीं।

जड़-चेतन जीवमात्र में भगवान के स्वरूप का दर्शन करके भगवद्बुद्धि करने से अपने प्रत्येक कर्म के द्वारा उनकी यथायोग्य उल्लासपूर्ण सेवा होती है। ऐसे सेवक के प्रत्येक कार्य से चराचर जगत में व्याप्त परमात्मा प्रसन्न होते हैं। यह सेवा अपने-आपमें उत्कृष्ट भगवद्पूजा है। सबमें भगवद्-दर्शन करने से वह स्वयं भी वही रूप हो जाता है क्योंकि स्वामी की सत्ता ही सेवक की सत्ता है। सेवक का अस्तित्व स्वामी से पृथक् नहीं होता। यदि पृथक् हो गया तो सेवा अपूर्ण रहेगी क्योंकि पृथक् होने से एक नये 'मैं' की उत्पत्ति हो जाती है और वह सेवा के रस को अपने में समेट लेता है। स्वामी का ज्ञान ही सेवक का ज्ञान है और इस प्रकार अंततः स्वामी का 'मैं' ही सेवक का 'मैं' हो जाता है, सेवक स्वयं स्वामी हो जाता है।

माता-पिता-गुरु की सेवा का महत्त्व

युधिष्ठिर ने पूछा : ''भारत ! धर्म का यह मार्ग बहुत बड़ा है तथा इसकी बहुत-सी शाखाएँ हैं। इन धर्मों में से आप किसको विशेष रूप से आचरण में लाने योग्य समझते हैं ? सब धर्मों में कौन-सा कार्य आपको श्रेष्ठ जान पड़ता है, जिसका अनुष्ठान करके मैं इहलोक और परलोक में भी परम धर्म का फल प्राप्त कर सकूँ ?''

भीष्मजी ने कहा : ''राजन् ! मुझे तो माता-पिता तथा गुरुजनों की पूजा ही अधिक महत्त्व की वस्तु जान पड़ती है। इस लोक में इस पुण्यकार्य में संलग्न होकर मनुष्य महान् यश और श्रेष्ठ लोक पाता है।

तात युधिष्ठिर ! भलीभाँति पूजित हुए वे माता-पिता और गुरुजन जिस काम के लिये आज्ञा दें, उसका पालन करना ही चाहिए।

जो उनकी आज्ञा के पालन में संलग्न है, उसके लिये दूसरे किसी धर्म के आचरण की आवश्यकता नहीं है। जिस कार्य के लिये वे आज्ञा दें, वही धर्म है, ऐसा धर्मात्माओं का निश्चय है।

ये माता-पिता और गुरुजन ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं तथा ये ही तीनों अग्नियाँ हैं।

पिता गार्हपत्य अग्नि हैं, माता दक्षिणाग्नि मानी गयी है और गुरु आहवनीय अग्नि का स्वरूप हैं। लौकिक अग्नियों की अपेक्षा माता-पिता आदि त्रिविध अग्नियों का गौरव अधिक है।

यदि तुम इन तीनों की सेवा में कोई भूल नहीं करोगे तो तीनों लोकों को जीत लोगे। पिता की सेवा से इस लोक को, माता की सेवा से परलोक को तथा नियमपूर्वक गुरु की सेवा

से ब्रह्मलोक को भी लाँघ जाओगे।

भरतनन्दन ! इसलिये तुम त्रिविध लोकस्वरूप इन तीनों के प्रति उत्तम बर्ताव करो। तुम्हारा कल्याण हो। ऐसा करने से तुम्हें यश और महान् फल देनेवाले धर्म की प्राप्ति होगी।

इन तीनों की आज्ञा का कभी उल्लंघन न करना, इनको भोजन कराने के पहले स्वयं भोजन न करना, इन पर कोई दोषारोपण न करना और सदा इनकी सेवा में संलग्न रहना, यही सबसे उत्तम पुण्यकर्म है। नृपश्रेष्ठ ! इनकी सेवा से तुम कीर्ति, पवित्र यश और उत्तम लोक सब कुछ प्राप्त कर लोगे।

जिसने इन तीनों का आदर कर लिया, उसके द्वारा सम्पूर्ण लोकों का आदर हो गया और जिसने इनका अनादर कर दिया, उसके सम्पूर्ण शुभ कर्म निष्फल हो गये।

शत्रुओं को संताप देनेवाले नरेश ! जिसने इन तीनों गुरुजनों का सदा अपमान ही किया है, उसके लिये न तो यह लोक सुखद है और न परलोक। न इस लोक में और न परलोक में ही उसका यश प्रकाशित होता है। परलोक में जो अन्य कल्याणमय सुख की प्राप्ति बतायी गयी है, वह भी उसे सुलभ नहीं होती है।

मैं तो सारा शुभ कर्म करके इन तीनों गुरुजनों को ही समर्पित कर देता था। इससे मेरे उन सभी शुभ कर्मों का पुण्य सौगुना और हजारगुना बढ़ गया है। युधिष्ठिर ! इसीसे तीनों लोक मेरी दृष्टि के सामने प्रकाशित हो रहे हैं।

आचार्य यानी शास्त्रों के अनुसार आचरण बतानेवाला सदा दस श्रोत्रियों यानी शास्त्रों की कथा करनेवाले से बढ़कर है। उपाध्याय यानी विद्यागुरु दस आचार्यों से अधिक महत्त्व रखता है। पिता दस उपाध्यायों से बढ़कर है और माता का महत्त्व दस पिताओं से भी अधिक है। वह अकेली ही अपने गौरव के द्वारा सारी पृथ्वी को भी तिरस्कृत कर देती है। अतः माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है।

...परंतु मेरा विश्वास यह है कि ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु का पद पिता और माता से भी बढ़कर है, क्योंकि माता-पिता तो केवल इस शरीर को जन्म देते हैं जबकि सद्गुरु जीव के चिन्मय वपु को जन्म देते हैं।

भारत ! पिता और माता के द्वारा स्थूल शरीर का जन्म होता है परंतु सद्गुरु का उपदेश प्राप्त करके जीव को जो द्वितीय जन्म उपलब्ध होता है, वह दिव्य है, अजर-अमर है।

माता-पिता यदि कोई अपराध करें तो भी वे सदा अवध्य ही हैं, क्योंकि पुत्र या शिष्य माता-पिता और गुरु के प्रति अपराध करके भी उनकी दृष्टि में दूषित नहीं होते हैं। वे गुरुजन पुत्र या शिष्य पर स्नेहवश दोषारोपण नहीं करते हैं, बल्कि सदा उसे धर्म के मार्ग पर ही ले जाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे पिता-माता आदि गुरुजनों का महत्त्व महर्षियों सहित देवता ही जानते हैं।

जो सत्कर्म और यथार्थ उपदेश के द्वारा पुत्र या शिष्य को कवच की भाँति ढँक लेते हैं, सत्यस्वरूप वेद का उपदेश देते हैं और असत्य की रोक-थाम करते हैं, उन गुरु को ही पिता और माता समझें और उनके उपकार को जानकर कभी उनसे द्रोह न करें।

जो लोग विद्या पढ़कर गुरु का आदर नहीं करते, निकट रहकर मन, वाणी और क्रिया द्वारा गुरु की सेवा नहीं करते, उन्हें गर्भ के बालक की हत्या से भी बढ़कर पाप लगता है। संसार में उनसे बड़ा पापी दूसरा कोई नहीं है। जैसे, गुरुओं का कर्त्तव्य है शिष्य को आत्मोन्नति के पथ पर पहुँचाना, उसी तरह शिष्यों का धर्म है गुरुओं का पूजन करना।

अतः जो पुरातन धर्म का फल पाना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे गुरुओं की पूजा-अर्चना करें और प्रयत्नपूर्वक उन्हें आवश्यक वस्तुएँ समर्पित करें।

मनुष्य जिस कर्म से पिता को प्रसन्न करता है, उसीके द्वारा प्रजापति ब्रह्माजी भी प्रसन्न होते हैं तथा जिस बर्ताव से वह माता को प्रसन्न कर लेता है, उसीके द्वारा समूची पृथ्वी की भी पूजा हो जाती है।

जिस कर्म से शिष्य गुरु को प्रसन्न करता है, उसीके द्वारा परब्रह्म परमात्मा की पूजा सम्पन्न हो जाती है। अतः माता-पिता से भी अधिक पूजनीय गुरु हैं।

गुरुओं के पूजित होने पर पितरोंसहित देवता और ऋषि भी प्रसन्न होते हैं, इसलिये गुरु परम पूजनीय हैं।

किसी भी बर्ताव के कारण गुरु अपमान के योग्य नहीं होते। इसी तरह माता और पिता भी अनादर के योग्य नहीं हैं। जैसे, गुरु माननीय हैं, वैसे ही माता-पिता भी माननीय हैं।

वे तीनों कदापि अपमान के योग्य नहीं हैं। उनके किये हुए किसी भी कार्य की निन्दा नहीं करनी चाहिए। गुरुजनों के इस सत्कार को देवता और महर्षि भी अपना सत्कार मानते हैं।

गुरु, पिता और माता के प्रति जो मन, वाणी और क्रिया द्वारा द्रोह करते हैं, उन्हें भ्रूणहत्या से भी बढ़कर महान् पाप लगता है। संसार में उनसे बढ़कर दूसरा कोई

(शेष पृष्ठ २५ ऊपर)

शिवविरोधी की गति

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

दो प्रकार के कर्त्तव्य होते हैं : एक तो सामाजिक ऐहिक कर्त्तव्य और दूसरा, जिस उद्देश्य के लिए शरीर मिला है, उस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कर्त्तव्य।

ऐहिक उद्देश्य की पूर्ति ऐहिक शरीर तक ही सीमित है लेकिन वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति सनातन सत्य से मिला देती है।

जो ऐहिक कर्त्तव्य में तो चतुर है, दक्ष है लेकिन वास्तविक कर्त्तव्य में लापरवाह है वह व्यवहार में कितना भी दक्ष हो, लोकपालों का मुख्य दक्ष प्रजापति हो, भगवान शंकर का ससुर हो लेकिन परमार्थ में गति नहीं है तो उसकी भी दुर्गति होती है।

वह यज्ञ करवाता है, बड़ी कुशलता रखता है, बड़े-बड़े लोकपालों का अध्यक्ष है, लेकिन जब तक सर्व दुःखों की निवृत्ति एवं परमानंद की प्राप्ति का लक्ष्य नहीं है तब तक राग-द्वेष की निवृत्ति भी नहीं होती। राग-द्वेष की निवृत्ति नहीं है तो आदमी जरा-जरा बात में पचता रहता है।

एक बार जब दक्ष अपनी सभा में आये तब लोकपाल, गंधर्व, किन्नर आदि सबने उठकर उनका अभिवादन किया लेकिन भगवान शिव अपने-आपमें, अपने शुद्ध-बुद्ध स्वरूप में बैठे रहे। दक्ष ने सोचा : 'चलो, ब्रह्माजी नहीं उठे तो कोई बात नहीं, वे तो पितामह हैं, भगवान विष्णु साक्षात् नारायण हैं लेकिन शिव तो मेरे जमाई हैं। बेटे का कर्त्तव्य है कि पिता को प्रणाम करे और शिवजी तो मेरे बेटे के बराबर हैं फिर भी उन्होंने मुझे प्रणाम तक नहीं किया!' यह सोचकर वे शिवजी को खरी-खोटी सुनाने लगे।

दक्ष प्रजापति व्यवहार में तो दक्ष थे लेकिन उनमें आत्मज्ञान का प्रकाश नहीं था। लक्ष्य सबका एक है : सब दुःखों की निवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति लेकिन साधन चुनने में थोड़ी लापरवाही, थोड़ा अज्ञान.... **अज्ञानेन आवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।** शिवजी के ससुर होने पर भी अज्ञान से ज्ञान ढँक गया और मोहित हो गये कि शिवजी को मेरा आदर करना चाहिए।

दक्ष प्रजापति शिवजी को खरी-खोटी सुनाने लगे और भरी सभा में शिवजी का ऐसा अपमान किया कि वहाँ उपस्थित शिवगण और भक्त कुपित हो गये तो उन्होंने भी दक्ष प्रजापति को खरी-खोटी सुनायी। इससे दक्ष के समर्थक भी कुपित हो उठे तो उन्होंने भी शिवगणों को खरी-खोटी सुनायी। आमने-सामने श्रापा-श्रापी हो गयी कि : 'जो शिव की भक्ति करेगा वह भ्रष्ट होगा।' शिवभक्तों ने कहा कि : 'जो दक्ष के पीछे चलेगा उसका विनाश होगा।'

उस जमाने में शाप सफल हो जाता था क्योंकि मनुष्य में सत्यबल एवं तपोबल था।

भगवान शिव कुछ नहीं बोले। वे चुपचाप सभा से उठकर चल दिये। सोचा कि : 'चलो, भले ससुर हैं, व्यवहार में दक्ष हैं लेकिन परमार्थ में अभी 'बेचारे' हैं।' परन्तु दक्ष को शांति नहीं हुई। उन्होंने शिवजी को नीचा दिखाने के लिए यज्ञ का आयोजन किया। उसमें सभी देवताओं को बुलाया लेकिन शिवजी को आमंत्रण नहीं भेजा शिवजी को नीचा दिखाने के लिए।

द्वेष से प्रेरित होकर उत्तम काम भी किया जाता है तो उसका फल उत्तम नहीं मिलता। अतः जो

भी कर्म करें, न द्वेष से प्रेरित होकर करें, न राग से प्रेरित होकर करें, बल्कि परमात्मा की प्रसन्नता के भाव से प्रेरित होकर करें तो बेड़ा पार हो जाये।

दक्ष के यज्ञ में सभी देवता विमान से जा रहे थे। उन्हें देखकर सतीजी ने शिवजी से पूछा :

''प्रभु ! ये सब कहाँ जा रहे हैं ?''

शिवजी : ''तुम्हारे पिता ने यज्ञ का आयोजन किया है वहीं जा रहे हैं।''

सतीजी : ''हमें भी जाना चाहिए।''

शिवजी : ''हमें आमंत्रण नहीं है।''

सतीजी : ''आमंत्रण नहीं है तो कोई बात नहीं। पिता और गुरु के यहाँ तो बिना आमंत्रण के भी जाना चाहिए।''

सतीजी गयीं दक्ष के यहाँ लेकिन दक्ष ने आँख उठाकर देखा तक नहीं।

सतीजी समझ गयीं कि मेरे पतिदेव ने जो कहा था वह बिल्कुल सत्य है। शिव के विरोधी दक्ष से प्राप्त शरीर को रखना उन्हें ठीक नहीं लगा एवं योगाग्नि से अपना शरीर पिता के यज्ञ में स्वाहा कर दिया। योगाग्नि से जब वे ज्वाला में लीन हुईं तो लोगों ने दक्ष को खूब सुनायी।

समय पाकर नारदजी घूमते-घामते शिवलोक में गये। शिवजी से पूछा : ''आज कल माँ सतीजी दिखायी नहीं दे रही हैं ?''

शिवजी : ''वह अपने पिता दक्ष के यज्ञ में गयी है।''

नारदजी : ''प्रभु ! 'यज्ञ में गयी हैं...' ऐसा न कहो बल्कि 'यज्ञ में गयी थीं...' ऐसा कहो।''

शिवजी : ''क्या मतलब ?''

नारदजी : ''सतीजी गयी थीं। दक्ष ने तो आपको नीचा दिखाने के लिए ही द्वेषवश यज्ञ किया था। आपका आसन वहाँ नहीं था। आपके सम्मान के लिए तो नहीं, वरन् आपकी अपकीर्ति के लिये उन्होंने यज्ञ किया था। सतीजी जब यह जान गयीं कि पिता और पति में वैमनस्य हुआ है तो उन्हें अपना शरीर रखना ठीक नहीं लगा। उन्होंने योगाग्नि से अपना शरीर नष्ट कर दिया।''

शिवजी नाराज हो गये। उन्होंने अपनी एक जटा नोंची। उसमें से वीरभद्र प्रगट हुए। शिवजी ने कहा : ''जरा देखो।'' ...तो वीरभद्र ने दक्ष के यज्ञ का ध्वंस कर दिया और उसका सिर काटकर यज्ञ में बलि दे दी गयी।

दक्ष प्रजापति में चतुराई तो बहुत थी लेकिन चतुराईवाला, दक्षतावाला खोपड़ा संसार की आग में खुद भी तप मरता है और दूसरों को भी तपाता है। अगर आत्मज्ञान का उद्देश्य नहीं है तो अहंपूर्ति के लिए कर्म करेगा, किसीको नीचा दिखाने के लिए कर्म करेगा या विषय-विकार के लिए कर्म करेगा। कर्म के करने की आसक्ति मिटाने के लिए कर्म नहीं करेगा, परमात्मा को पाने के लिए कर्म नहीं करेगा तो फिर यह खोपड़ा किस काम का ?

दक्ष के अनुयायियों का भी बड़ा बुरा हाल हुआ। किसीकी टाँग तोड़ दी गयी, किसीके हाथ तोड़ दिये गये तो किसीकी दाढ़ी नोंच ली गई तो किसीके दाँत निकाल दिये गये तो किसीका कुछ...

आखिर शिवजी ने उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर करुणा-कृपा कर दी एवं दक्ष के धड़ पर बकरे का सिर लगाकर उसे जीवित कर दिया।

अभी-भी शिवमंदिर में जाते हैं तो बकरे की आवाज (बेंहेंऽऽऽ... बेंहेंऽऽऽ...) करके शिव को याद करते हैं कि : 'हम कितने भी चतुर हैं लेकिन दक्ष की नाईं बकरे न रह जायें। तेरे शिवतत्त्व में, तेरे ज्ञानतत्त्व में हमारी प्रीति हो जाये, भोलेनाथ ! ऐसी कृपा करना।'

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

साधकों के लिये विशेष...

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

जिन्होंने भी दीक्षा ली है, प्राणायाम जानते हैं वे इस गुरुपूनम के बाद १०-१० त्रिबंध प्राणायाम करेंगे। जो नहीं जानते, वे जानकार साधकों से सीख लेंगे। त्रिबंध प्राणायाम से बहुत सारे लाभ होते हैं।

गुरु हमें गुरु-परंपरा से प्राप्त कई अनुभवों से सार-सार बातें बता रहे हैं। चाहे कैसी भी गंदी-पुरानी आदत होगी, त्रिबंध प्राणायाम से उसे आप उखाड़ फेंकने में सफल हो जाओगे। हर आदमी में कोई-न-कोई कमजोरी होती है और दूसरे लोग उसे चाहे जानें या न जानें लेकिन हम अपने-आपकी कमजोरी बिल्कुल जानते हैं। त्रिबंध प्राणायाम से उस कमजोरी को निकालने में आप अवश्य सफल हो जाओगे।

त्रिबंध प्राणायाम करो। फिर जो कमजोरी है मन से उसको सामने लाओ एवं मन-ही-मन कहो कि : 'अब मैं इस कमजोरी के आगे घुटने नहीं टेकूँगा। भगवद्कृपा, भगवन्नाम, मंत्र मेरे साथ है। हरि ॐ... ॐ... ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ... बल ही जीवन है... दुर्बलता मौत है...'

मान लो, किसीको दोपहर को भोजन करके सोने की आदत है। दोपहर को सोने से शरीर मोटा हो जाता है और त्रिदोष पैदा हो जाते हैं। बस, यह ठान लो कि : 'मैं दिन में सोने की गलती निकालूँगा।' मान लो, किसीको अधिक खाने की आदत है। नहीं जरूरत है फिर भी खाते रहते हैं। शरीर मोटा हो गया है। ...तो नियम ले लो : 'अब तुलसी के पत्ते रोज खाऊँगा... भोजन में अदरक का प्रयोग करूँगा।' वायु की तकलीफ है तो निर्णय करो : 'आज से आलू मेरे लिए बंद।' इस प्रकार जिस कारण से रोग होता है ऐसी चीजों को लेना बंद कर दो। जिस कारण से चटोरापन होता है वे चीजें दूसरों को दे दो और निर्णय करो कि : 'आज से इतने दिनों तक इस दोष में नहीं गिरूँगा।' यदि काम और लोभ का दोष है तो निर्णय करो कि : 'आज से इतने दिनों तक काम में नहीं गिरूँगा... लोभ में नहीं गिरूँगा...' इस प्रकार जो भी बुरी आदत है या विकार है, कुछ दिनों तक ऐसा कुछ नियम ले लो जो उसके विपरीत भावों का हो। मान लो, आपका चिड़चिड़ा स्वभाव है, क्रोधी स्वभाव है तो 'राम... राम... राम...' रटन करके हास्य करो और निर्णय करो कि : 'आज से इतने दिनों तक मैं प्रसन्न रहूँगा।' चिंता में डूबने की आदत है तो दृढ़ भावना करो कि : 'मैं निश्चिन्त नारायण का हूँ... ॐ शांति... शांति...' दस मिनट तक यह भावना दुहराओ। इस प्रकार की कोई भी कमजोरी हो, सिगरेट-शराब की या दूसरी कोई हो... इस प्रकार के अलग-अलग दोषों को निवृत्त करने के लिए त्रिबंध प्राणायाम आदि अलग-अलग प्रयोग **'ध्यान योग शिविर'** में कराये जाते हैं। इससे आप अपनी पुरानी बुरी आदत और कमजोरी को निकालने में सफल हो सकते हो। आपका शरीर फुर्तीला रहेगा, मन पवित्र होने लगेगा और ध्यान-भजन में बरकत आयेगी।

त्रिबंध प्राणायाम शुद्ध हवामान में करना चाहिए, सात्त्विक वातावरण में करना चाहिए। दोपहर को भी करो तो और अच्छा है। कभी-न-कभी शिविर तो भरोगे ही... शिविर में कई प्रयोग सिखाये जाते हैं।

हफ्ते में एकाध दिन मौन रहो। हो सके तो

संध्या को सूर्यास्त के बाद या रात्रि के भोजन के बाद मौन रहने का संकल्प कर लो कि : 'सूर्योदय से पहले अथवा नियम होने तक किसीसे बात नहीं करेंगे ।' इससे आपकी काफी शक्ति बच जायेगी एवं आप जिस क्षेत्र में हैं वहाँ भी वह शक्ति काम करेगी । इस मौन को यदि आप परमात्मप्राप्ति में लगाना चाहो तो साथ में अजपाजाप का भी प्रयोग करो । सुबह नींद से उठने के बाद थोड़ी देर शांत होकर बैठो एवं विचार करो कि : 'हो-होकर क्या होगा ? बड़े शर्म की बात है कि मनुष्य जन्म पाकर भी जरा-जरा-सी बात में दुःखी, भयभीत एवं चिंतित होता हूँ। दुःख, चिन्ता एवं भय में तो वे रहें जिनके माई-बाप मर गये हों और जो निगुरे हों । हमारे माई-बाप तो हमारा आत्मा-परमात्मा है और गुरु का ज्ञान मेरे साथ है । हरि ॐ... हरि ॐ... राम... राम... अब हम प्रयत्न करेंगे लेकिन चिंता नहीं करेंगे...' आदि-आदि । सुबह ऐसा संकल्प करो फिर देखो कि आप कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाते हो ।

जप तीन प्रकार से कर सकते हैं : ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत । 'हरिॐ-हरिॐ-हरिॐ-हरिॐ-हरिॐ...' यह है ह्रस्व जप । 'हरि... ॐ... हरि... ॐ... हरि... ॐ... हरि... ॐ... हरि... ॐ...' यह है दीर्घ जप ।

'ह...रि...ॐ... ह...रि...ॐ... ह...रि...ॐ... ह...रि...ॐ... ह...रि...ॐ... ' यह है प्लुत जप ।

रात्रि को सोते समय इन तीनों प्रकार से दस मिनट तक 'हरि ॐ...' मंत्र का जप करके सो जाओ । इस प्रकार के जप से आपको तन, मन एवं बुद्धि में कुछ विशेष परिवर्तन का अनुभव होगा । यदि प्रतिदिन इसका नियम बना लो तो आपकी तो बंदगी बन जायेगी और साथ ही आपके अचेतन मन में भी भारी लाभ होने लगेगा ।

इस प्रकार नियमित रूप से किये गये त्रिबंध प्राणायाम, मौन, जप एवं ध्यान की साधना आपके जीवन में चार चाँद लगा देंगे ।

*

समय का सदुपयोग

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

हमारे भीतर छिपी हुई शक्तियों को विकसित करने के लिये हमारे पास समय चाहिए और समय का सदुपयोग करने की तरकीब चाहिए। समय देकर आप दुनिया की सब चीजें प्राप्त कर सकते हो लेकिन दुनिया की सब चीजें न्यौछावर करके भी आप बीता हुआ समय वापस नहीं पा सकते ।

जो लोग गपशप में समय खर्च कर देते हैं, जो लोग पत्नी के साथ, पति के साथ विषय-भोग में समय खर्च कर देते हैं, मित्रों के साथ घूमने-फिरने में समय बिता देते हैं, कामनाओं की तृप्ति में समय खो देते हैं, हास्य-विलास में समय को नष्ट कर देते हैं, वे लोग बड़ी गलती करते हैं । उन लोगों से भी ज्यादा अभागे लोग वे हैं जो व्यसनों में, विकारों में अपना समय और स्वास्थ्य बरबाद कर देते हैं। व्यसन किया, अपने आस-पास के वातावरण को भी विषाक्त किया और अपने को मानते हैं बुद्धिमान् । लोग अपना समय गपशप लगाने में, शराब पीने में, उपन्यास पढ़ने में, सिनेमा देखने में लगाते हैं । समय को बरबाद करनेवाला स्वयं बरबाद हो जाता है ।

समय का यदि सदुपयोग किया जाय तो हम लोग महात्मा बन सकते हैं। हम लोगों में और महात्मा में क्या फर्क है ? महात्मा ने अपने क्षण-

क्षण को सँभाला है। उन्होंने अपने जीवन के क्षणों को ऊँचे-में-ऊँचे, अति ऊँचे काम में लगाया है। हमारा समय भी उतना ही कीमती है लेकिन उसको जितने हल्के काम में खर्च करते हैं उतना हल्का परिणाम मिलता है, मध्यम काम में खर्च करते हैं उतना मध्यम बदला मिलता है और उत्तम काम में खर्च करते हैं तो उत्तम बदला मिलता है। परम श्रेष्ठ परमात्मा के लिए समय खर्च करते हैं तो बदले में हम परमात्ममय बन जाते हैं। समय के सदुपयोग की बलिहारी है सब !

इसी समय को आप जप-तप में लगा दो तो आप जपेश्वरी-तपेश्वरी बनोगे। इसी समय को ताश खेलने में लगा दो तो आप जुआरी बनोगे। समय का सदुपयोग करो। यदि हम प्रतिदिन अपनी दैनंदिनी लिखें तो पता चलेगा कि हमारा कितना समय फालतू बीत जाता है।

शरीर को स्वस्थ रखने हेतु योगी को प्रतिदिन चार घण्टे की नींद चाहिए, भोगी हो तो छः घण्टे और रोगी हो तो आठ घण्टे की नींद चाहिए। बालक को भी आठ घण्टे की नींद आवश्यक है क्योंकि उसके शरीर का सर्जन हो रहा है।

आप छः घण्टे सोने में बिताओ, आठ घण्टे ऐहिक जीवन की आवश्यकताओं के साधन जुटाने में बिताओ, दो घण्टे सामाजिक कार्यों के लिये दो, दो घण्टे फालतू समय के गिन लो तो ६+८+२+२=१८ घण्टे हुए। फिर भी आपके पास छः घण्टे बचते हैं। ये छः घण्टे प्रतिदिन आप छः मास तक साधना में बिताओ तो आज जहाँ हो, वहाँ से काफी-काफी बहुत-बहुत ऊँची अवस्था में पहुँच सकते हो।

जिस डाल पर खड़ा था उसी डाल को काटनेवाला महामूर्ख लड़का महाकवि कालिदास बन गया। उसने **'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'** नाटक, **'रघुवंशमहाकाव्यम्'** एवं अन्य कई सुन्दर-सुन्दर संस्कृत रचनाएँ कीं। जर्मनी का विश्वविख्यात कवि गेटे **'शाकुन्तलम्'** पढ़कर इतना खुश हुआ कि वह ग्रन्थ सिर पर रखकर सड़कों पर नाचा ! यह क्या है ? केवल समय का सदुपयोग। जीवन में कुछ ठेस लग जाय, सोयी हुई शक्तियाँ जागृत करने के लिये आप कटिबद्ध हो जाओ तो बहुत कुछ हो सकता है। आज तक जो हो गया सो हो गया, लेकिन अब चेत जाओ।

बीत गई सो बीत गयी,
तकदीर का शिकवा कौन करे ?
जो तीर कमान से निकल गया,
उस तीर का पीछा कौन करे ?

जो बीत गया उसकी चिंता मत करो। अभी से यदि आप समय को सँभाल लो तो आसाराम यह आशा करता है कि आप इसी जीवन में सत्य का, आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार कर सकते हो। केवल समय का सदुपयोग करो।

एक-दूसरे से फालतू बातें मत पूछो। यह पूछो कि : 'सत्संग में कौन-सी बात चली थी ? जल्दी प्रभुप्राप्ति हो जाये, स्व में शांति मिल जाये ऐसी कौन-सी बात थी ?' ऐसी बातें पूछोगे तो सामनेवाले का सत्संग पक्का हो जायेगा और आपका सुषुप्त वैराग्य, सुषुप्त ज्ञान, सुषुप्त भक्ति, सुषुप्त योग, साधना की सुषुप्त भावनाएँ जागृत होंगी।

समय का सदुपयोग करने मात्र से आप नर में से नारायण बन सकते हैं। अतः एक-एक सेकण्ड का सदुफ्योग करो। धन को आप तिजोरी में रख सकते हो लेकिन समय को तिजोरी में नहीं रख सकते। समय यूँ ही बीता चला जा रहा है। धन से भी समय ज्यादा कीमती है।

वक्त बीता चला जा रहा है... क्षण भर की आयु में थोड़ा यश मिला, थोड़ा धन मिला, थोड़ी पद-प्रतिष्ठा मिली और हमने अपने को भाग्यवान् मान लिया। काम-क्रोधादि के आवेग में अपना समय खर्च कर दिया। लेकिन ज्यों-ही समय बीता, बुढ़ापे ने घेर लिया, मौत ने दस्तक दी तब आदमी बोलता है कि : 'अरे ! मेरा कोई नहीं है.... मेरा कुछ नहीं है...'

अतः अभी हम जो भी अर्जन कर रहे हैं तो

सोचो कि : 'हमारे समय का ठीक-ठीक सदुपयोग हो रहा है कि नहीं ? देश-विदेश में धन को एकत्रित करने के बाद भी हमारी शांति, हमारा जीवन, हमारी उपलब्धियाँ शाश्वत् हैं क्या ?'

जो आदमी ऐसे विवेक का सहारा लेता है वह अपने समय को ठीक जगह पर लगाता है।

विवेकवान् पुरुष नश्वर उपलब्धियों से मुँह मोड़कर अपना समय परमार्थ सिद्ध करने में लगाता है। अगर साधना की सच्ची लगन हो तो दैनिक व्यवहार में से कम-से-कम चार-छः घंटे जप-तप-ध्यान में लगा सकते हो। ऐसी नियमित साधना से कुछ ही समय में आपको पता चलेगा कि : 'यह सौदा बहुत सस्ता है। परमात्मा इतना दूर न था जितना समय हमको लग गया उसे जानने में। कई युग बीत गये लेकिन आज तक मुलाकात नहीं हुई। केवल हमारे पास उत्साह की कमी थी, वरना वह अंतर्यामी परमेश्वर बहुत नजदीक था, बहुत पास था।'

इन छः बातों से बचो

देवर्षि नारद ने गालव ऋषि से कहा है:

''चाहे साधु हो चाहे सर्वसामान्य व्यक्ति, सभी को इन छः बातों से बचना चाहिए :

१. रात को घूमना।
२. दिन में नींद करना।
३. आलस्य का आश्रय लेना।
४. चुगली करना।
५. गर्व करना।
६. अति परिश्रम करना अथवा परिश्रम से बिल्कुल दूर रहना।

अधिक आराम से आलस्य आयेगा और अधिक परिश्रम से साधन-भजन की क्षमता बिखर जायेगी।''

योगामृत

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

ध्यान की गहराई में उतरो

मत्स्येन्द्रनाथ कई प्रहर ध्यान किया करते थे।

यह जरूरी नहीं कि ज्यादा घण्टे ध्यान करने से बढ़िया ध्यान और कम समय करने से घटिया ध्यान होता है। नहीं... जैसे एक व्यक्ति आठ घण्टे में जितना काम करता है, दूसरा व्यक्ति उतना काम छः घण्टे में भी कर सकता है। दूसरे आदमी में ज्यादा योग्यता हो सकती है। ध्यान में एक व्यक्ति एक घण्टे में जितना लाभ पा सकता है, दूसरा व्यक्ति एक घण्टे में उससे ज्यादा लाभ भी पा सकता है। शारीरिक कार्य में तो दुगुना, तिगुना या चारगुना हो सकता है लेकिन ध्यान में केवल उतना ही लाभ नहीं होता बल्कि इससे कई गुना ज्यादा हो सकता है।

चित्त में ध्यान की महिमा का जितना-जितना स्पष्ट ख्याल होगा, जितना-जितना चित्त सुसंस्कृत होगा, चित्त में तत्त्व का विचार, चैतन्य के विषय का ज्ञान जितना-जितना अधिक होगा, समझ अधिक होगी और सद्गुरु की कृपा होगी, उतना-उतना थोड़े समय में भी ज्यादा लाभ हो जायेगा।

पाँच वर्ष के ध्रुव ने छः महीने में ही त्रिभुवनपति को प्रगट कर दिया जबकि लोग बारह-बारह साल तो क्या बारह-बारह जन्म तक साधना करते रहते हैं फिर भी त्रिभुवनपति तो क्या एक चिड़िया भी नहीं

आती।

रामकृष्ण परमहंस तो वही-के-वही थे लेकिन नरेन्द्र ने गुरु को इतना झेल लिया, वे इतना आगे बढ़ गये कि दूसरे शिष्य देखते ही रह गये ! दूसरों को लाभ हुआ लेकिन नरेन्द्र (विवेकानंद) को दूसरों से कई हजारों गुना ज्यादा लाभ हुआ। मेहनत में तो दूसरे शिष्य विवेकानंद की बराबरी कर लेते किन्तु ध्यान में उतना आगे नहीं बढ़ पाये। ध्यान के विषय में तो जिसकी जितनी श्रद्धा, सूक्ष्मता और तत्परता होती है, वह उतना आगे बढ़ जाता है।

कभी यह न सोचो कि : 'फलाने लोग १२ साल से रहते हैं फिर भी आगे नहीं बढ़े हैं तो हम कैसे आगे बढ़ेंगे ?' नहीं... उनकी रुचि नहीं है आध्यात्मिक उन्नति में, ईश्वर-प्राप्ति में। अगर आप थोड़े समय से आये हो और रुचि से आये हो, आपकी तत्परता है, श्रद्धा है तो आप आगे बढ़ जाओगे। दूसरा भले १२ साल से रहता हो लेकिन रुचि नहीं है तो...

एक बाल्टी पानी में दो सौ ग्राम शक्कर डालने से जितनी मिठास होती है, उतनी-की-उतनी मिठास या उससे भी ज्यादा मिठास चुटकीभर सेक्रीन डालने से हो जाती है। मिठास का घनीभूतरूप सेक्रीन है ऐसे ही घनीभूत ध्यान का लाभ ज्यादा होता है। जैसे कोई आठ घण्टे से बिस्तर पर पड़ा हो फिर भी नींद का उसे इतना फायदा नहीं मिलता जितना तीन घण्टे की प्रगाढ़ नींद से फायदा होता है। ऐसे ही प्रगाढ़ ध्यान का लाभ ज्यादा है।

प्रगाढ़ ध्यान उन्हीं का होता है जिनके जीवन में अहं, मान की लालसा और दंभ नहीं होता। ये दोष जितने-जितने ज्यादा होंगे उतने-उतने वर्ष अधिक लग जायेंगे और ये दोष जितने-जितने कम होते जायेंगे उतना-उतना ध्यान प्रगाढ़ होता जायेगा। प्रगाढ़ ध्यान से प्रकृति अनुकूल होती जायेगी, सुख निखरता जायेगा, आनंद और शांति बढ़ती जायेगी।

भगवान कहते हैं :

आत्मैव ह्यात्मनो बंधुः आत्मैव रिपुरात्मनः।

मनुष्य स्वयं ही अपने-आपका मित्र है और स्वयं ही अपने-आपका शत्रु। जो मनुष्य इन दोषों को निकालकर अंतःकरण को निर्मल करता जाता है उसका ध्यान प्रगाढ़ होता जाता है, वह अपने-आपका मित्र बनता जाता है और जो इन दोषों को निकालने में लापरवाह रहता है वह अपने आपका शत्रु हो जाता है। भगवान बुद्ध कहते थे : ''**अप्प दीपो भव।** अपना दीया आप बनो।''

*

साधना के छः विघ्न

निद्रा, तंद्रा, आलस्य, मनोराज, लय और रसास्वाद- ये छः साधना के बड़े विघ्न हैं। अगर ये विघ्न न आयें तो हर मनुष्य भगवान के दर्शन कर ले।

जब हम माला लेकर जप करने बैठते हैं तब मन कहीं-से-कहीं भागता है। फिर 'मन नहीं लग रहा...' ऐसा कहकर माला रख देते हैं। घर में भजन करने बैठते हैं तो मंदिर याद आता है और मंदिर में जाते हैं तो घर याद आता है। काम करते हैं तो माला याद आती है और माला करने बैठते हैं तब कोई-न-कोई काम याद आता है। यह एक व्यक्ति का प्रश्न नहीं, सबका प्रश्न है और यही मनोराज है।

दो दोस्त थे। आपस में उनका बड़ा स्नेह था। एक दिन वे खेत में घूमने के लिये निकले और विचारने लगे कि : 'हम एक बड़ी जमीन लें और भागीदारी में खेती करें...'

एक ने कहा : ''मैं ट्रैक्टर लाऊँगा। तू कुआँ खुदवाना।''

दूसरा : ''ठीक है। ट्रैक्टर खराब हो जाये तो मैं बैल रखूँगा।''

पहला : ''अगर तेरे बैल मेरे हिस्से के खेत में घुस जायेंगे तो मैं उन्हें खदेड़ दूँगा।''

दूसरा : ''क्यों ? मेरे बैलों को क्यों

आती।

रामकृष्ण परमहंस तो वही-के-वही थे लेकिन नरेन्द्र ने गुरु को इतना झेल लिया, वे इतना आगे बढ़ गये कि दूसरे शिष्य देखते ही रह गये ! दूसरों को लाभ हुआ लेकिन नरेन्द्र (विवेकानंद) को दूसरों से कई हजारों गुना ज्यादा लाभ हुआ। मेहनत में तो दूसरे शिष्य विवेकानंद की बराबरी कर लेते किन्तु ध्यान में उतना आगे नहीं बढ़ पाये। ध्यान के विषय में तो जिसकी जितनी श्रद्धा, सूक्ष्मता और तत्परता होती है, वह उतना आगे बढ़ जाता है।

कभी यह न सोचो कि : 'फलाने लोग १२ साल से रहते हैं फिर भी आगे नहीं बढ़े हैं तो हम कैसे आगे बढ़ेंगे ?' नहीं... उनकी रुचि नहीं है आध्यात्मिक उन्नति में, ईश्वर-प्राप्ति में। अगर आप थोड़े समय से आये हो और रुचि से आये हो, आपकी तत्परता है, श्रद्धा है तो आप आगे बढ़ जाओगे। दूसरा भले १२ साल से रहता हो लेकिन रुचि नहीं है तो...

एक बाल्टी पानी में दो सौ ग्राम शक्कर डालने से जितनी मिठास होती है, उतनी-की-उतनी मिठास या उससे भी ज्यादा मिठास चुटकीभर सेक्रीन डालने से हो जाती है। मिठास का घनीभूतरूप सेक्रीन है ऐसे ही घनीभूत ध्यान का लाभ ज्यादा होता है। जैसे कोई आठ घण्टे से बिस्तर पर पड़ा हो फिर भी नींद का उसे इतना फायदा नहीं मिलता जितना तीन घण्टे की प्रगाढ़ नींद से फायदा होता है। ऐसे ही प्रगाढ़ ध्यान का लाभ ज्यादा है।

प्रगाढ़ ध्यान उन्हीं का होता है जिनके जीवन में अहं, मान की लालसा और दंभ नहीं होता। ये दोष जितने-जितने ज्यादा होंगे उतने-उतने वर्ष अधिक लग जायेंगे और ये दोष जितने-जितने कम होते जायेंगे उतना-उतना ध्यान प्रगाढ़ होता जायेगा। प्रगाढ़ ध्यान से प्रकृति अनुकूल होती जायेगी, सुख निखरता जायेगा, आनंद और शांति बढ़ती जायेगी।

भगवान कहते हैं :

आत्मैव ह्यात्मनो बंधुः आत्मैव रिपुरात्मनः।

मनुष्य स्वयं ही अपने-आपका मित्र है और स्वयं ही अपने-आपका शत्रु। जो मनुष्य इन दोषों को निकालकर अंतःकरण को निर्मल करता जाता है उसका ध्यान प्रगाढ़ होता जाता है, वह अपने-आपका मित्र बनता जाता है और जो इन दोषों को निकालने में लापरवाह रहता है वह अपने आपका शत्रु हो जाता है। भगवान बुद्ध कहते थे : ''**अप्प दीपो भव।** अपना दीया आप बनो।''

*

साधना के छः विघ्न

निद्रा, तंद्रा, आलस्य, मनोराज, लय और रसास्वाद- ये छः साधना के बड़े विघ्न हैं। अगर ये विघ्न न आयें तो हर मनुष्य भगवान के दर्शन कर ले।

जब हम माला लेकर जप करने बैठते हैं तब मन कहीं-से-कहीं भागता है। फिर 'मन नहीं लग रहा...' ऐसा कहकर माला रख देते हैं। घर में भजन करने बैठते हैं तो मंदिर याद आता है और मंदिर में जाते हैं तो घर याद आता है। काम करते हैं तो माला याद आती है और माला करने बैठते हैं तब कोई-न-कोई काम याद आता है। यह एक व्यक्ति का प्रश्न नहीं, सबका प्रश्न है और यही मनोराज है।

दो दोस्त थे। आपस में उनका बड़ा स्नेह था। एक दिन वे खेत में घूमने के लिये निकले और विचारने लगे कि : 'हम एक बड़ी जमीन लें और भागीदारी में खेती करें...'

एक ने कहा : ''मैं ट्रैक्टर लाऊँगा। तू कुआँ खुदवाना।''

दूसरा : ''ठीक है। ट्रैक्टर खराब हो जाये तो मैं बैल रखूँगा।''

पहला : ''अगर तेरे बैल मेरे हिस्से के खेत में घुस जायेंगे तो मैं उन्हें खदेड़ दूँगा।''

दूसरा : ''क्यों ? मेरे बैलों को क्यों

खदेड़ेगा ?''

पहला : ''क्योंकि वे मेरी खेती को नुकसान पहुँचायेंगे।''

इस प्रकार दोनों में कहा-सुनी हो गयी और बात बढ़ते-बढ़ते मारपीट तक पहुँच गयी। दोनों ने एक-दूसरे का सिर फोड़ दिया। मुकदमा हो गया।

दोनों न्यायालय में गये। न्यायाधीश ने पूछा :

''आपकी लड़ाई कैसे हुई ?''

दोनों बोले : ''जमीन के संबंध में हमारी बात हुई थी।''

''कितनी जमीन और कहाँ ली थी ?''

''अभी तक ली नहीं है।''

''फिर क्या हुआ ?''

एक : ''मेरे हिस्से में ट्रैक्टर आता था, इसके हिस्से में कुआँ और बैल।''

न्यायाधीश : ''बैल कहाँ हैं ?''

दूसरा : ''अभी तक खरीदे नहीं हैं।''

जमीन ली नहीं है, कुआँ खुदवाया नहीं है, ट्रैक्टर और बैल खरीदे नहीं हैं फिर भी मन के द्वारा सारा बखेड़ा खड़ा कर दिया है और लड़ रहे हैं।

इसका नाम मनोराज है। माला करते-करते भी मनोराज करता रहता है यह साधना का बड़ा विघ्न है।

कभी-कभी प्रकृति में मन का लय हो जाता है। आत्मा का दर्शन नहीं होता किन्तु मन का लय हो जाता है और लगता है कि ध्यान किया। ध्यान में से उठते हैं तो जम्हाई आने लगती है। यह ध्यान नहीं, लय हुआ। वास्तविक ध्यान में से उठते हैं तो ताजगी, प्रसन्नता और दिव्य विचार आते हैं किन्तु लय में ऐसा नहीं होता है।

कभी-कभी साधक को रसास्वाद परेशान करता है। साधना करते-करते थोड़ा-बहुत आनंद आने लगता है तो मन उसी आनंद का आस्वाद लेने लग जाता है और अपना मुख्य लक्ष्य भूल जाता है।

कभी साधना करने बैठते हैं तो नींद आने लगती है और जब सोने की कोशिश करते हैं तो नींद नहीं आती। यह भी साधना का एक विघ्न है।

तंद्रा भी एक विघ्न है। नींद तो नहीं आती किन्तु नींद जैसा लगता है। कितनी मालाएँ घूमीं इसका पता नहीं चलता। यह सूक्ष्म निद्रा अर्थात् तंद्रा है।

साधना करने में आलस्य आता है। 'अभी नहीं, बाद में करेंगे...' यह भी एक विघ्न है।

इन विघ्नों को जीतने के उपाय भी हैं।

मनोराज एवं लय को जीतना हो तो दीर्घ स्वर से 'ॐ...' का जप करना चाहिए।

स्थूल निद्रा को जीतने के लिये अल्पाहार और आसन करने चाहिए। सूक्ष्म निद्रा यानी तंद्रा को जीतने के लिये प्राणायाम करना चाहिए।

आलस्य को जीतना हो तो निष्काम कर्म करने चाहिए। सेवा से आलस्य दूर होगा एवं धीरे-धीरे साधना में भी मन लगने लगेगा। प्राणायाम और आसन भी आलस्य को दूर करने में सहायक हैं।

रसास्वाद से भी सावधान रहो एवं अपना विवेक सतत बनाये रखो। सदैव सजग और सावधान रहो। साधना के विघ्नों को पहचानकर उचित उपाय से उनका निराकरण करो और अपने लक्ष्य-पथ पर निरंतर आगे बढ़ते रहो।

*

जो मनुष्य इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना चाहता है उसे एक ही जन्म में हजारों वर्षों का काम कर लेना होगा। उसे इस युग की रफ्तार से बहुत आगे निकलना होगा। जैसे स्वप्न में मान-अपमान, मेरा-तेरा, अच्छा-बुरा दिखता है और जागने के बाद उसकी सत्यता नहीं रहती वैसे ही इस जाग्रत जगत में भी अनुभव करना होगा। बस... हो गया हजारों वर्षों का काम पूरा। ज्ञान की यह बात हृदय में ठीक से जमा देनेवाले कोई महापुरुष मिल जायें तो हजारों वर्षों के संस्कार, मेरे-तेरे के भ्रम को दो पल में ही निवृत्त कर दें और कार्य पूरा हो जाय।

('जीवन रसायण' पुस्तक से)

भक्ति की शक्ति

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

एक योगी ने योगबल से संकल्प करके अपना सूक्ष्म शरीर निकाला और भगवान विष्णु के लोक में गया। वहाँ जाकर उसने भगवान से कहा :

''मुझे आपकी प्रेमाभक्ति दे दो।''

भगवान : ''योगी ! तुझे चाहिए तो राज्य दे दूँ। अरे, तुझे चक्रवर्ती सम्राट बना दूँ।''

योगी : ''नहीं, प्रभु ! मुझे तो केवल आपकी प्रेमाभक्ति चाहिए।''

भगवान : ''योगी ! अष्टसिद्धि ले लो।''

योगी : ''नहीं, भगवान !''

भगवान : ''...तो नवनिधियाँ ले लो।''

योगी : ''भगवान ! आप इतना सारा देने को तैयार हैं लेकिन अपनी प्रेमाभक्ति नहीं देते ? क्या बात है ?''

भगवान : ''अगर प्रेमाभक्ति दे दूँ तो भक्त के पीछे-पीछे घूमना पड़ता है और अन्य सब चीजें दे देता हूँ तो भक्त उन्हीं में रममाण रहता है। मुझे उसके पीछे जाना नहीं पड़ता।''

कितनी महिमा है प्रेमाभक्ति की !

कहा गया है :

ये मुहब्बत की बातें हैं ओधव !
बंदगी अपने बस की नहीं है ॥
यहाँ सिर देकर होते हैं सिज़दे।
आशिकी इतनी सस्ती नहीं है ॥

भगवान की प्रेमाभक्ति में नित्य नवीन रस आता है। यह बहुत ऊँची चीज है। धन मिल जाना, राज्य मिल जाना, सत्ता मिल जाना, कुँआरे की शादी हो जाना, निःसंतान को संतान मिल जाना, ये सब तुच्छ चीजें हैं। भगवान की भक्ति मिल जाये और गुरुकृपा का पात्र बनने का अवसर मिल जाये फिर कुछ बाकी नहीं बचता है।

दुनिया की सब चीजें मिल जायें तो भी क्या ? मरने के बाद तो सब यहीं पड़ा रह जायेगा। फिर जन्म-मरण के चक्र में पड़ेंगे और चंद्रमा की किरणों के द्वारा, वर्षा की बूँदों के द्वारा अन्न में, फल में जायेंगे। उसे मनुष्य खायेंगे और नर के द्वारा नारी के गर्भ में जायेंगे। वह नारी भी दो पैरवाली होगी तो मनुष्य, चार पैरवाली होगी तो गधा, घोड़ा, बैल आदि बनेंगे।

किसी माता के गर्भ में उलटे होकर लटकना पड़े उससे पहले भगवान की भक्ति करके उसीको पा लो भैया ! न जाने यह मनुष्य जन्म फिर मिले या न मिले... ऐसी बुद्धि मिले या न मिले... ऐसी श्रद्धा हो या न हो... किसने देखा है ?

स्वामी निर्मलजी ने कहा है :

''न जाने कौन-कौन-से जन्म पा चुकने के बाद यह मानव शरीर मिला है। गुरुदेव भी कामिल हैं। तुम पर पूर्ण गुरुकृपा भी है। वातावरण भी आध्यात्मिक है। फिर भी तुम लोग उससे लाभ नहीं उठा पाते... अपने स्वरूप की पहचान के लिये आगे नहीं बढ़ते... हमें दुःख होता है। क्या तुम्हें विश्वास है कि दोबारा जन्म इसी तरह का ही मिलेगा, ऐसा ही वातावरण, ऐसे ही गुरुदेव तथा ऐसी ही भावनाएँ और ऐसी ही श्रद्धा फिर होगी ? पगले ! क्यों सो रहे हो ? अब भी जाग जाओ। इससे दुनिया का कुछ नहीं बिगड़ेगा।

तू शाही है परवाज है काम तेरा।
तेरे लिये आसमां और भी हैं ॥
इसी रूज़ो-राब में उलझकर न रहना।
तेरे तो कोनो-मकां, और भी हैं ॥

✲

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

परमात्मप्रेम में सहायक पाँच बातें

परमात्मप्रेम बढ़ाने के लिये जीवन में निम्नलिखित पाँच बातें आ जायें ऐसा यत्न करना चाहिए :

१. भगवच्चरित्र का श्रवण करो । महापुरुषों के जीवन की गाथाएँ सुनो या पढ़ो । इससे भक्ति बढ़ेगी एवं ज्ञान-वैराग्य में मदद मिलेगी ।

२. भगवान की स्तुति-भजन गाओ या सुनो ।

३. अकेले बैठो तब भजन गुनगुनाओ । अन्यथा, मन खाली रहेगा तो उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आयेंगे । कहा भी गया है कि : 'खाली दिमाग शैतान का घर ।'

४. जब परस्पर मिलो तब परमेश्वर की, परमेश्वर-प्राप्त महापुरुषों की चर्चा करो । दिया तले अँधेरा होता है लेकिन दो दीयों को आमने-सामने रखो तो अँधेरा भाग जाता है । फिर प्रकाश-ही-प्रकाश रहता है । अकेले में भले कुछ अच्छे विचार आयें किन्तु वे ज्यादा अभिव्यक्त नहीं होते हैं । जब ईश्वर की चर्चा होती है तब नये-नये विचार आते हैं । एक-दूसरे का अज्ञान हटता है, एक-दूसरे का प्रमाद हटता है, एक-दूसरे की अश्रद्धा मिटती है ।

भगवान और भगवत्प्राप्त महापुरुषों में हमारी श्रद्धा बढ़े ऐसी ही चर्चा करनी-सुननी चाहिए । सारा दिन ध्यान नहीं लगेगा, सारा दिन समाधि नहीं होगी । अतः ईश्वर की चर्चा करो, ईश्वर-संबंधी बातों का श्रवण करो । इससे समझ बढ़ती जायेगी, प्रकाश बढ़ता जायेगा, शांति बढ़ती जायेगी ।

५. सदैव प्रभु की स्मृति करते-करते चित्त में आनंदित होने की आदत डाल दो ।

ये पाँच बातें परमात्मप्रेम बढ़ाने में अत्यंत सहायक हैं ।

✲

परमात्मप्रेम में बाधक पाँच बातें

निम्नलिखित पाँच कारणों से परमात्मप्रेम में कमी आती है :

१. अधिक ग्रंथ पढ़ने से परमात्मप्रेम बिखर जाता है ।

२. बहिर्मुख लोगों की बातों में आने से और उनकी लिखी हुई पुस्तकें पढ़ने से परमात्मप्रेम बिखर जाता है ।

३. बहिर्मुख लोगों के संग से, उनके साथ खाने-पीने अथवा हाथ मिलाने से हल्के स्पंदन ('वायब्रेशन') आते हैं और उनके श्वासोच्छ्वास में आने से भी परमात्मप्रेम में कमी आती है ।

४. किसी भी व्यक्ति में आसक्ति करोगे तो आपका परमात्मप्रेम खड्डे में फँस जायेगा, गिर जायेगा । जिसने परमात्मा को नहीं पाया है उससे अधिक प्रेम करोगे तो वह आपको अपने स्वभाव में गिरायेगा । परमात्मप्राप्त महापुरुषों का ही संग करना चाहिए ।

'श्रीमद्भागवत' में देवहूति को भगवान कपिल कहते हैं : ''आसक्ति बड़ी दुर्जय है । वह जल्दी नहीं मिटती । वही आसक्ति जब सत्पुरुषों में होती है तब वह संसारसागर से पार लगानेवाली हो जाती है ।''

प्रेम करो तो ब्रह्मवेत्ताओं से, उनकी वाणी से, उनके ग्रंथों से । संग करो तो ब्रह्मवेत्ताओं का ही । इससे प्रेमरस बढ़ता है, भक्ति का माधुर्य निखरता है, ज्ञान का प्रकाश होने लगता है ।

५. उपदेशक या वक्ता बनने से भी प्रेमरस सूख जाता है ।

✲

आत्मविद्या की धनी : फुलीबाई

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

यह जोधपुर (राजस्थान) के पास के गाँव की महान् नारी फुलीबाई की गाथा है। कहते हैं कि उनके पति शादी के थोड़े समय बाद ही स्वर्ग सिधार गये थे। उनके माता-पिता ने कहा :

''तेरा सच्चा पति तो परमात्मा ही है, बेटा! चल, तुझे गुरुदेव के पास दीक्षा दिलवा दें।''

उनके समझदार माता-पिता ने समर्थ गुरु महात्मा भूरीबाई से उन्हें दीक्षा दिलवा दी। अब फुलीबाई अपने गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार साधना में लीन हो गईं। प्राणायाम, जप और ध्यान आदि करते-करते उनकी बुद्धिशक्ति विकसित होने लगी। वे इस बात को खूब अच्छे से समझने लगीं कि प्राणिमात्र के परम हितैषी, सच्चे स्वामी तो एकमात्र परमात्मा ही हैं। धीरे-धीरे परमात्मा के रंग में अपने जीवन को रँगते-रँगते, प्रेमाभक्ति से अपने हृदय को भरते-भरते वे सुषुप्त शक्तियों को जागृत करने में सफल हो गईं।

लौकिक विद्या में अनपढ़ वे फुलीबाई अलौकिक विद्या पाने में सफल हो गईं। अब वे निराधार न रहीं बल्कि सर्वाधार के स्नेह से परिपूर्ण हो गईं। उनके चित्त में नयी दिव्य स्फुरणाएँ स्फुरित होने लगीं। उनका जीवन परमात्म-प्रकाश से जगमगाने लगा। ऐहिक रूप से फुलीबाई बहुत गरीब थीं किन्तु उन्होंने वास्तविक धन को पा लिया था।

गोबर के कण्डे बना-बनाकर वे अपनी आजीविका चलाती थीं किन्तु उनकी पड़ोसन उसमें से भी कण्डे चुरा लेती। एक बार फुलीबाई को उस स्त्री पर दया आयी एवं बोलीं :

''बहन! यदि तू चोरी करेगी तो तेरा मन अपवित्र होगा और भगवान तुझसे नाराज हो जायेंगे। अगर तुझे चाहिए तो तुझे पाँच-पचीस कण्डे दे दिया करूँगी किन्तु तू चोरी करके अपना, अपने मन एवं बुद्धि का एवं अपने कुटुम्ब का सत्यानाश मत कर।''

वह पड़ोसन स्त्री तो दुष्टा थी। वह तो फुलीबाई को गालियों पर गालियाँ देने लगी। इससे फुलीबाई के चित्त में जरा भी क्षोभ न हुआ वरन् उनके चित्त में दया उपजी एवं वह बोलीं :

''बहन! मैं तुम्हें जो कुछ कह रही हूँ, वह तुम्हारी भलाई के लिये ही कह रही हूँ। तुम झगड़ो मत।''

चोरी करनेवाली महिला को ज्यादा गुस्सा आ गया। फिर फुलीबाई ने भी थोड़ा-सा सुना दिया। झगड़ा बढ़ने लगा तो गाँव का मुखिया एवं ग्राम-पंचायत इकट्ठी हो गयी। सबको एकत्रित देखकर वह चोरी करनेवाली महिला बोली :

''फुलीबाई चोर है, मेरे कण्डे चुरा जाती है।''

फुलीबाई : ''चोरी करने को मैं पाप समझती हूँ।''

तब गाँव का मुखिया बोला : ''हम न्याय कैसे दें कि कण्डे किसके हैं? कण्डों पर नाम तो किसीका नहीं लिखा और आकार भी एक जैसा है। अब यह कैसे बताएँ कि कौन-से कण्डे फुलीबाई के हैं एवं कौन-से उसकी पड़ोसन के?''

जो स्त्री चोरी करती थी, उसका पति कमाता था फिर भी मलिन मन के कारण वह चोरी करती थी। ऐसी बात नहीं कि कोई गरीबी के कारण ही चोरी करता है। कई बार तो समझ गरीब होती है तब भी लोग चोरी करते हैं। फिर कोई कलम से

चोरी करता है, कोई रिश्वत के रूप में चोरी करता है, कोई नेता बनकर जनता से चोरी करता है। समझ जब कमजोर होती है तभी मनुष्य हराम के पैसे लेकर विलासी जीवन जीने की इच्छा करता है और समझ ऊँची होती है तो मनुष्य ईमानदारी की कमाई से पवित्र जीवन जीता है। फिर वह भले सादा जीवन जिये लेकिन उसके विचार ऊँचे होते हैं।

फुलीबाई का जीवन खूब सादगीपूर्ण था लेकिन उनकी भक्ति एवं समझ बहुत बढ़ गयी थी। उन्होंने कहा :

''यह स्त्री मेरे कण्डे चुराती है इसका प्रमाण यह है कि यदि आप मेरे कण्डों को अपने कानों के पास रखेंगे तो उसमें से राम नाम की आवाज आयेगी। जिन कण्डों में से राम नाम की आवाज आये उन्हें आप मेरे समझना और जिनमें से न निकले उन्हें इसके समझना।''

ग्राम-पंचायत के कुछ सज्जन लोग एवं मुखिया उस महिला के यहाँ गये। उसके कण्डों के ढेर में से एक-एक कण्डा उठाकर कान के पास रखकर देखने लगे। जिस कण्डे में से राम-नाम की ध्वनि का अनुभव होता उसे अलग रख देते। इस प्रकार लगभग ५० कण्डे निकले।

मंत्रजप करते-करते फुलीबाई की रगों में, नस-नाड़ियों में एवं पूरे शरीर में मंत्र का प्रभाव छा गया था। वे जिन वस्तुओं को छूतीं उनमें भी मंत्र की सूक्ष्म तरंगों का संचार हो जाता था। गाँव के मुखिया एवं उन सज्जनों को फुलीबाई का यह चमत्कार देखकर उनके प्रति आदरभाव हो आया। उन लोगों ने फुलीबाई का सत्कार किया।

मनुष्य में कितनी शक्ति है ! कितना सामर्थ्य है ! उसे यदि योग्य मार्गदर्शन मिल जाये एवं वह तत्परता से लग जाये तो क्या नहीं कर सकता ?

फुलीबाई ने गुरुमंत्र प्राप्त करके, गुरु के निर्देशानुसार साधना की तो उनमें इतनी शक्ति आ गयी कि उनके द्वारा बनाये गये कण्डों से भी राम-नाम की ध्वनि निकलने लगी।

एक दिन राजा यशवंतसिंह के सैनिकों की एक टुकड़ी दौड़ने के लिये निकली। उसमें से एक सैनिक फुलीबाई की झोंपड़ी में पहुँचा एवं उनसे पानी माँगा।

फुलीबाई ने कहा : ''बेटा ! दौड़कर तुरंत पानी नहीं पीना चाहिए। इससे तंदुरुस्ती बिगड़ती है एवं आगे जाकर खूब हानि होती है। दौड़ लगाके आये हो तो थोड़ी देर बैठो। मैं तुम्हें रोटी का टुकड़ा देती हूँ, उसे खाकर फिर पानी पियो।''

सैनिक : ''माताजी ! हमारी पूरी टुकड़ी दौड़ती आ रही है। यदि मैं खाऊँगा तो मुझे मेरे साथियों को भी खिलाना पड़ेगा।''

फुलीबाई : ''मैंने दो रोटले बनाये हैं, गुवारफली की सब्जी है। तुम सब लोग टुकड़ा-टुकड़ा खा लेना।''

सैनिक : ''पूरी टुकड़ी केवल दो रोटले में से टुकड़ा-टुकड़ा कैसे खा पायेगी ?''

फुलीबाई : ''तुम चिंता मत करो। मेरे राम मेरे साथ हैं।''

फुलीबाई ने दो रोटले एवं सब्जी को ढँक दिया। कुल्ले करके आँख-कान को पानी का स्पर्श कराया।

'हम जो देखें पवित्र देखें, हम जो सुनें पवित्र सुनें...' ऐसा संकल्प करके आँख-कान को जल का स्पर्श करवाया जाता है।

फुलीबाई ने सब्जी-रोटी को कपड़े से ढँककर भगवद्-स्मरण किया एवं इष्टमंत्र में तल्लीन होते-होते टुकड़ी के सैनिकों को वह रोटले का टुकड़ा एवं सब्जी देती गयीं।

फुलीबाई के हाथों से बने उस भोजन में दिव्यता आ गयी थी। उसे खाकर पूरी टुकड़ी बड़ी प्रसन्न एवं संतुष्ट हुई। उन्हें आज तक ऐसा भोजन नहीं मिला था। उन सभी ने फुलीबाई को प्रणाम किया एवं वे विचार करने लगे कि इतने-से झोंपड़े में इतना सारा भोजन कहाँ से आया !

सबसे पहले जो सैनिक पहुँचा था उसे पता था कि फुलीबाई ने केवल दो रोटले एवं थोड़ी-सी

सब्जी बनायी है किन्तु उन्होंने जिस बर्तन में भोजन रखा है वह बर्तन उनकी भक्ति के प्रभाव से एक अक्षयपात्र बन गया है।

यह बात राजा यशवंतसिंह के कानों तक पहुँची। वह रथ लेकर फुलीबाई के दर्शन करने के लिये आया। रथ को दूर खड़ा रखा, जूते उतारे, मुकुट उतारा एवं एक साधारण नागरिक की तरह वह फुलीबाई के द्वार तक पहुँचा। फुलीबाई की तो एक नन्हीं-सी झोंपड़ी है और आज उसमें जोधपुर का सम्राट खूब नम्र भाव से खड़ा है। क्या भक्ति की महिमा है! क्या परमात्मज्ञान की महिमा है कि जिसके आगे बड़े-बड़े सम्राट तक नतमस्तक हो जाते हैं!

यशवंतसिंह ने फुलीबाई के चरणों में प्रणाम किया। थोड़ी देर बातचीत की, सत्संग सुना। फुलीबाई ने अपने अनुभव की बातें बड़ी निर्भीकता से राजा यशवंतसिंह को सुनाईं :

''बेटा यशवंत ! तू बाहर का राज्य तो कर रहा है लेकिन अब भीतर का राज्य भी पा ले। तेरे अंदर ही आत्मा है, परमात्मा है। वही असली राज्य है। उसका ज्ञान पाकर तू असली सुख पा ले। कब तक बाहर के विषय-विकारों के सुख में अपने को ग़रक़ करता रहेगा ? हे यशवंत ! तू यशस्वी हो। अच्छे कार्य कर और उन्हें भी ईश्वरार्पण कर दे। ईश्वरार्पण बुद्धि से किया गया काम भक्ति हो जाता है। राग-द्वेष से प्रेरित कर्म जीव को बंधन में डालता है किन्तु तटस्थ होकर किया गया कर्म जीव को मुक्ति के पथ पर ले जाता है।

हे यशवंत ! सजी-धजी ललनाएँ देखकर काम याद आता है जबकि साधु-संत एवं गुरुजनों को देखकर राम की याद आती है, भगवान की याद आती है। जो विकार उत्पन्न करें ऐसे दर्शन कम कर। संतों के एवं गुरु के दर्शन का समय बढ़ा दे। बेटा ! तेरा कल्याण होगा।

यशवंत ! तेरे खजाने में जो धन है वह तेरा नहीं है, वह तो प्रजा का पसीना है। उस धन को जो राजा अपने विषय-विलास में खर्च कर देता है ऐसे राजा को रौरव नरक के दुःख भोगने पड़ते हैं, कुंभीपाक जैसे नरकों में जाना पड़ता है। जो राजा प्रजा के धन का उपयोग प्रजा के हित में, प्रजा के स्वास्थ्य के लिये, प्रजा के विकास के लिये करता है वह राजा यहाँ भी यश पाता है और उसे स्वर्ग की भी प्राप्ति होती है। हे यशवंत ! यदि वह राजा भगवान की भक्ति करे, संतों का संग करे तो भगवान के लोक को भी पा लेता है और यदि वह भगवान के लोक को पाने की भी इच्छा न करे वरन् भगवान को ही जानने की इच्छा करे तो वह भगवद्स्वरूप का ज्ञान पाकर भगवद्स्वरूप, ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।''

फुलीबाई की अनुभवयुक्त वाणी सुनकर यशवंतसिंह पुलकित हो उठा। उसने अत्यंत श्रद्धा-भक्ति से फुलीबाई के चरणों में प्रणाम किया। फुलीबाई की वाणी में सच्चाई थी, सहजता थी और ब्रह्मज्ञान का तेज था, जिसे सुनकर यशवंतसिंह भी नतमस्तक हो गया।

कहाँ तो जोधपुर का सम्राट और कहाँ लौकिक दृष्टि से अनपढ़ फुलीबाई ! किन्तु उन्होंने यशवंतसिंह को ज्ञान दिया। यह ब्रह्मज्ञान है ही ऐसा कि जिसके सामने लौकिक विद्या का कोई मूल्य नहीं होता।

यशवंतसिंह का हृदय पिघल गया। वह विचार करने लगा कि : 'फुलीबाई के पास खाने के लिये विशेष भोजन नहीं है, रहने के लिये कोई अच्छा मकान नहीं है, विषय-भोग की कोई सामग्री नहीं है फिर भी वे संतुष्ट रहती हैं और मेरे जैसे राजा को भी उनके पास आकर शांति मिलती है। सचमुच, वास्तविक सुख तो भगवान की भक्ति में एवं भगवत्प्राप्त महापुरुषों के श्रीचरणों में ही है, बाकी तो संसार में जल-जलकर मरना ही है। वस्तुओं को भोग-भोगकर मनुष्य जल्दी कमजोर एवं बीमार हो जाता है जबकि फुलीबाई कितनी मजबूत दिख रही हैं!'

(क्रमशः)

युवक की समझ

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

राजा भोज को एक युवक ने अपनी असाधारण प्रतिभा से बड़ा प्रसन्न कर दिया । वह युवक प्रतिदिन प्रातःकाल जल्दी उठता था । सूर्योदय के पहले स्नानादि कर लेने से बुद्धि में सात्त्विकता आती है, स्वभाव में प्रसन्नता आती है और स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है ।

वह युवक सुबह जल्दी उठकर गुरु के बताये अनुसार ध्यान-जप करता था । उसका व्यवहार प्रसन्नता एवं आत्मीयता से इतना भरा होता था कि सारे मंत्री भी उसका गुणगान किये बिना नहीं रह सकते थे ।

राजा भोज ने वर्ष के अंत में उस युवक का सम्मान-समारोह आयोजित करवाया एवं उसकी प्रशंसा करते हुए कहा :

''युवक ! भले तुम किसी और के पुत्र हो लेकिन मेरे राजकुमारों से भी तुम हजारगुना अच्छे हो । मैं तुम्हें क्या दूँ, मुझे समझ में नहीं आ रहा । तुम्हारी असाधारण सेवाओं से मैं दबा-सा रह गया हूँ । तुम स्वयं ही कुछ माँग लो ताकि मेरा भार कुछ हल्का हो जाये ।

तुम जो चाहो, मैं दे सकता हूँ । राज्य में एक से बढ़कर एक सुंदरियाँ हैं । तुम जिससे कहो उससे तुम्हारा विवाह करवा दूँ, तुम्हें रहने के लिए एक महल दे दूँ, दो-पाँच गाँव भी दे दूँ, मनोरंजन के लिये नर्तकियाँ आदि दे दूँ । तुमने मुझे खुश किया है, मैं भी तुम्हें खुश करना चाहता हूँ । तुम भी खुशी से, मजे की जिन्दगी जियो ।

तुमने मेरी बहुत सेवा की है । यदि मैं तुम्हें कुछ न दूँ तो मैं मानव कहलाने के लायक ही न रहूँ ।

माँग लो, युवक ! माँग लो । तुम्हें जो चाहिए वह माँग लो ।''

राजा भोज की यह बात सुनकर भारत के उस युवक ने क्या गज़ब का उत्तर दिया ! उसने कहा :

''राजन् ! मुझे जो चाहिए वह आपके पास है ही नहीं तो मैं क्या माँगूँ ? सामनेवाले के पास हो, वही चीज माँगना चाहिए । उसके सामर्थ्य से बाहर की चीज माँगना, माँगनेवाले की नासमझी है ।''

राजा भोज हैरान रह गये युवक की बातें सुनकर ! फिर बोले :

''मेरे पास किस चीज की कमी है ? सुंदर स्त्री, धन, राज्य सभी कुछ तो है । अगर तुम कहो तो तुम्हें बहुत सारी जमीन-जागीर दे सकता हूँ या पाँच-पचीस गाँव भी दे सकता हूँ । माँग लो, संकोच न करो ।''

युवक : ''राजन् ! सुंदर स्त्री, मनोरंजन करनेवाली नर्तकियाँ और महल आदि मनोरंजन, भोग दे सकते हैं किन्तु यह जीवन भोग में बरबाद होने के लिये नहीं है वरन् जीवनदाता का ज्ञान पाने के लिये है और इसके लिये मुझे किसी ब्रह्मवेत्ता महापुरुष की कृपा की आवश्यकता है । आपकी कृपा बहुत हो गयी । आप जो देना चाहते हैं उससे मनोरंजन मिलेगा और मुझे वह मनोरंजन नहीं चाहिए । मैं तो मन की शांति पाना चाहता हूँ और वह भी आने-जानेवाली शांति नहीं, परम शांति पाना चाहता हूँ । वह परम शांति आपके पास नहीं है राजन् ! फिर मैं आपसे क्या माँगूँ ?''

राजा भोज धर्मात्मा थे । वे बोले :

''युवक ! तुम धन्य हो ! तुम्हारे माता-पिता भी धन्य हैं ! तुमने तो जीवन की जो वास्तविक माँग

है वही कह दी। परम शांति तो मनुष्यमात्र की माँग है। तुम धन्य हो, युवक !''

बाहर की धन-दौलत, सुख-सुविधाएँ कितनी भी मिल जायें, उससे कभी पूर्ण तृप्ति नहीं होती। बाहर की चाहे कितनी भी प्रतिष्ठा मिल जाये, सत्ता मिल जाये, अरे ! एक व्यक्ति को ही सारी धरती का राज्य मिल जाये, धन मिल जाये, सुंदरियाँ उसकी चाकरी में लग जायें फिर भी उसे परम शांति नहीं मिल सकती। परम शांति तो उसे मिलती है जिसे पूर्ण गुरु का पूर्ण ज्ञान मिल जाता है।

पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान।
आसुमल से हो गये, साँई आसाराम ॥

(संपादक)

पूर्णता की ओर

मैं अपने प्रभु को पाने की आस लिए चला।
अपूर्णता से पूर्णता की ओर बढ़ चला ॥
निराकार प्रभु जब, सद्गुरुरूप धरकर आये।
उनसे उन्हीं को पाने की, युक्ति सीख चला ॥
मुश्किलें हजार आयीं, पर न मैं हिला।
मुस्कुराकर हर चुनौती से गले मिला ॥
है न रंज कोई हार का, न जीत की खुशी।
सुख-दुःख में सम रहता, आगे मैं बढ़ चला ॥
गुरुसेवा-भक्ति-ज्ञान ही है, द्वार पूर्णता के।
गुरुचरणों में अपने आपको, मिटाता हुआ चला ॥
द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, तीनों से जो है पार।
उस सोहंस्वरूप की मस्ती में, खोता हुआ चला ॥
लायक नहीं था इसके, पर सद्गुरु की कृपा हुई।
करुणासिन्धु सद्गुरु की महिमा, गाते हुए चला ॥

- विकास खेमका,
सूरत (गुज.).

पाकिस्तानी ब्रिगेडियर ने नाक रगड़ी

सनातन संस्कृति की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें भय दिखाकर, जबरदस्ती करके ईश्वरीय सत्ता को मनाने की बात नहीं आती। भारतीय संस्कृति यह नहीं कहती कि : 'भगवान की ऐसी आज्ञा है अतः तुम्हें इसे मानना ही पड़ेगा, चाहे तुम्हें विश्वास हो अथवा नहीं हो।' किन्तु भारतीय संस्कृति जिस सत्य की बात करती है उस सत्य में इतनी शक्ति है कि वह अनेक परिस्थितियों के द्वारा अपने अस्तित्व का परिचय दे देता है।

सनातन धर्म के देवी-देवताओं के चमत्कारों से प्रभावित होकर विभिन्न मंदिरों में दर्शन के लिए मुगल बादशाह अकबर का जाना तथा वहाँ उसके द्वारा भेंट चढ़ाना... ऐसे किस्से इतिहास में मिलते हैं। एक ऐसी ही घटना है सन् १९६५ की जिसके प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी मौजूद हैं।

बात उस समय की है जब सन् १९६५ में भारत-पाकिस्तान का युद्ध हुआ था। राजस्थान के पाक सीमावर्ती जिले जैसलमेर से १२० कि.मी. की दूरी पर बना हुआ प्राचीन तनोट मातेश्वरी मंदिर दोनों देशों (भारत-पाकिस्तान) की सीमा के बहुत निकट स्थित है। यहाँ पर 'भारतीय सीमा सुरक्षा बल' की सीमा चौकी भी है।

युद्ध में पाकिस्तानी सेना द्वारा इस क्षेत्र में अनेक गोले दागे गये परन्तु महान् आश्चर्य ! मंदिर-

परिसर में गिरनेवाले शत्रुदल के गोले कभी फटते ही नहीं थे जिससे मंदिर तथा उसके आसपास के क्षेत्र को कोई भी नुकसान नहीं होता था। अतः यह क्षेत्र भारतीय जवानों के लिए एक सुरक्षित स्थान बन गया था। पाकिस्तान के ब्रिगेडियर को जब इस बात का पता चला तो उसने मंदिर को विशेष निशाना बनाया। पाक सेना ने मंदिर के आसपास लगभग ३००० बम बरसाये जिनमें से लगभग ४५० गोले मंदिर-परिसर में गिरे परन्तु परिणाम वही हुआ जो पहले से होता आ रहा था। अंततः पाकिस्तानी ब्रिगेडियर शाह नवाज़ खान ने गिड़गिड़ाते हुए मंदिर के पुजारी से माता के दर्शन करने की आज्ञा माँगी। पुजारी भला क्यों मना करते ? ब्रिगेडियर खान ने अश्रुपूरित नेत्रों से माता के चरणों में शीश झुकाया और हिन्दू परम्परा के अनुसार चाँदी का एक सुंदर छत्र भी चढ़ाया जो आज भी उस घटना का मूक गवाह बना हुआ है।

सन् १९७१ में हुए भारत-पाकिस्तान के दूसरे युद्ध में भी पाकिस्तानी सेना ने १६ दिसम्बर को बड़ी सैन्यशक्ति के साथ इस क्षेत्र पर आक्रमण करने का प्रयास किया किन्तु भारतीय सेना ने बड़ी ही आसानी से शत्रुसेना के सैकड़ों टैंकों व गाड़ियों को ध्वस्त कर दिया। अंततः हताश होकर शत्रुसेना को जान बचाकर भागने के लिए विवश होना पड़ा। भारत के जवानों ने इस विजय को माता का आशीर्वाद माना और मंदिर के द्वार पर 'विजय स्तंभ' का निर्माण कराया।

सन् १९६५ के युद्ध में पाकिस्तानी सेना द्वारा दागे गये तथा माता की कृपा से बेअसर हुए उन सैकड़ों गोलों में से कुछ गोले आज भी मंदिर-परिसर में रखे हुए हैं। इनकी ओर देखनेमात्र से ही उस सनातन सत्य की याद आ जाती है जिसका ज्ञान हमारी सनातन संस्कृति कराती है। ऐसी संस्कृति और ऐसे सत्य की ओर श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। धन्य है भारतभूमि... धन्य है भारतीय संस्कृति !

*
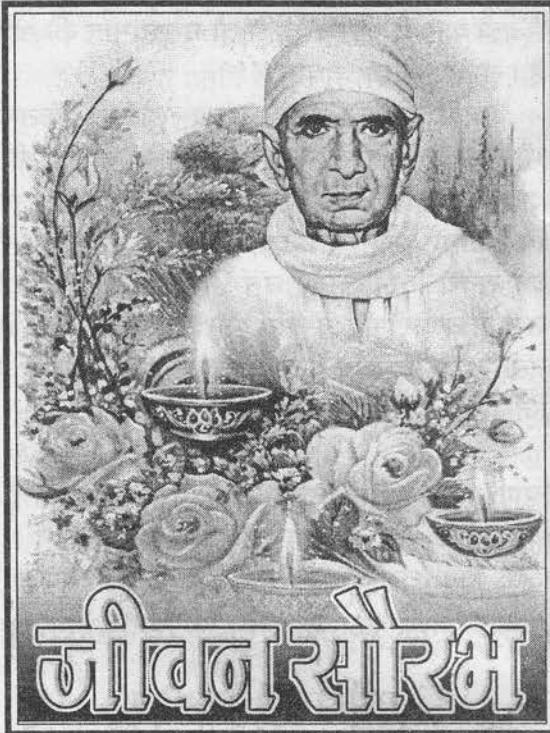
योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

[गतांक का शेष]

विजय किसकी होगी ?

१४ अप्रैल १९६५, आगरा।

स्वामीजी सत्संग-मंडप में व्यासपीठ पर विराजमान थे। उस समय किसी भक्त ने धर्म की विजय के बारे में स्वामीजी से पूछा :

''स्वामीजी ! चारों ओर युद्ध के काले बादल मँडरा रहे हैं, जिन्हें देखकर दिल काँप उठता है। अन्त में विजय किसकी होगी ?''

पूज्य स्वामीजी ने मंद-मंद मुस्कुराते हुए जवाब दिया : ''बाबा ! यह कोई नई बात नहीं है। युगों से यह रीति चली आ रही है। प्रकृति के नियम के अनुसार हमेशा धर्म की विजय और अधर्म का नाश होता है।

कौरव एवं पाण्डव के युद्ध को हजारों वर्ष हो गये, फिर भी आज पाण्डवों का यश चमक रहा है। श्रीरामचन्द्रजी के साथ रावण का घोर युद्ध हुआ जिसमें कई राक्षस मारे गये। अन्त में भगवान राम की विजय हुई। अत्याचार, अधर्म, अनीति और अन्याय के कारण कौरव एवं रावण की आखिर में पराजय हुई।

पाप का घड़ा भरकर अन्त में फूट जाता है, परन्तु जो धर्म के, सत्य के, कल्याण के मार्ग पर चलता है उसे भला भय कैसा? उन लोगों को शुरूआत में दुःख अवश्य झेलना पड़ता है, परन्तु अन्त में विजय तो सत्य की ही होती है।''

*

अपना आत्म-साम्राज्य पा लो

१६ दिसम्बर १९६५, श्रीकृष्ण गौशाला, आगरा।

भ्रांति अर्थात् सत्य वस्तु को यथावत् न जानकर उसे गलत रूप में मानना या जानना। जैसे, हो तो रस्सी और दिखे सर्प। वास्तविक रूप से देखें तो वह सर्प होता नहीं है और काटता भी नहीं है। उसी प्रकार सत्यस्वरूप परमात्मा को न जानकर नाम-रूपवाले जगत को सत्य मानना यह भ्रांति है। जगत में जो मोह अथवा भ्रांति भास रही है वह नाम-रूप की है। हम जो भी वस्तुएँ देखते हैं वे सब मिट्टी के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है। फिर भी घड़ा, पुस्तक, मनुष्य, पशु, मकान वगैरह नाम व्यवहार को चलाने के लिए देने पड़ते हैं। स्वरूप के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है फिर भी भासित होनेवाले जीवरूप हम, भासनेवाली वस्तुओं को व्यवहार के लिए अलग-अलग नाम-रूप देते हैं और उन्हें ही सत्य मान लेते हैं। उदाहरणार्थ : एक कागज पर हम छलनी रख दें तो प्रत्येक छिद्र में से कागज दिखता है फिर भी प्रत्येक छिद्रवाला भाग अपनेको दूसरे छिद्रवाले भाग से अलग माने तो यह भ्रांति है। इसी प्रकार माया के आवरण से ढँका हुआ जीव जब जन्मता है तब उसमें देह, कुटुम्ब एवं जगत के जैसे संस्कार पड़ते हैं वैसा वह अपनेको मान लेता है। (क्रमशः)

*

(पृष्ठ ८ का शेष)

पापाचारी नहीं है।

जो पिता-माता का दत्तक पुत्र है, पाल-पोसकर बड़ा कर दिया गया है, वह यदि अपने माता-पिता का भरण-पोषण नहीं करता है तो उसे भ्रूणहत्या से भी बढ़कर पाप लगता है और जगत में उससे बड़ा पापात्मा दूसरा कोई नहीं है।

मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्रीहत्यारे और गुरुघाती, इन चारों के पाप का प्रायश्चित हमारे सुनने में नहीं आया है।

इस जगत में पुरुष के द्वारा जो पालनीय हैं, वे सारी बातें यहाँ विस्तार के साथ बतायी गयी हैं। यही कल्याणकारी मार्ग है। इससे बढ़कर दूसरा कोई कर्त्तव्य नहीं है। सम्पूर्ण धर्मों का अनुसरण करके यहाँ सबका सार बताया गया है।

(महाभारत : शांतिपर्व)

*

गुरुभक्त संदीपक

महान् संत श्री गोरखनाथजी ने अपने शिष्यों को यह कथा सुनायी थी :

गोदावरी नदी के तट पर महात्मा वेदधर्म निवास करते थे। उनके पास आकर अनेक शिष्य वेद-शास्त्रों का अध्ययन करते थे। उनके सभी शिष्यों में संदीपक नामक शिष्य बड़ा मेधावी एवं गुरुभक्तिपरायण था।

एक दिन वेदधर्म ने अपने सभी शिष्यों को बुलाकर कहा :

''मेरे पूर्वजन्म के दुष्ट प्रारब्ध के कारण अब मुझे कोढ़ होगा, मैं अंधा हो जाऊँगा एवं पूरे शरीर से बदबू निकलेगी। अतः मैं आश्रम छोड़कर चला जाऊँगा। ऐसा कठिन काल मैं काशी में जाकर बिताना चाहता हूँ। जब तक मेरे दुष्ट प्रारब्ध का क्षय न हो जाय, तब तक मेरी सेवा के लिये तुममें से कौन-कौन मेरे साथ काशी आने के लिये तैयार है?''

गुरुजी की बात सुनकर शिष्यों में सन्नाटा छा गया। इतने में संदीपक उठा और विनम्रतापूर्वक बोला :

''गुरुजी! मैं प्रत्येक स्थिति में, प्रत्येक स्थान में आपके साथ रहकर आपकी सेवा करने के लिये तैयार हूँ।''

गुरुजी : ''बेटा! शरीर में कोढ़ निकलेगा, बदबू होगी, अंधा हो जाऊँगा। मेरे कारण तुझे भी बड़ी तकलीफ उठानी पड़ेगी। तू ठीक से विचार कर ले।''

संदीपक : ''गुरुदेव! कृपा कीजिये। मुझे भी अपने साथ ले चलिये।''

दूसरे ही दिन वेदधर्म ने संदीपक के साथ काशी की ओर प्रयाण किया। काशी पहुँचकर वे मणिकर्णिका घाट के उत्तर की ओर स्थित कंवलेश्वर नामक स्थान पर रहने लगे।

दो-चार दिन के बाद ही वेदधर्म के योगबल के संकल्प से उनके शरीर में कोढ़ निकल आया। थोड़े दिनों के पश्चात् उनकी आँखों की रोशनी भी चली गयी। अंधत्व एवं कोढ़ के कारण उनका स्वभाव भी उग्र, चिड़चिड़ा, विचित्र-सा हो गया।

संदीपक दिन-रात गुरुजी की सेवा में लग गया। वह गुरु को नहलाता, गुरु के घावों से निकलता हुआ मवाद साफ करता, औषधि लगाता। उनके वस्त्र साफ करता। समय पर गुरुजी को भोजन कराता।

सेवा करते-करते संदीपक की सब वासनाएँ जल गयीं। उसकी बुद्धि में प्रकाश छा गया। सेवा में उसे बड़ा आनंद आता था।

घर बिच आनंद रह्या भरपूर।
मनमुख स्वाद न पाया॥

यदि मनमुख होकर साधना करोगे तो कुछ भी हाथ न आयेगा, भटक जाओगे। लेकिन गुरु के बताये हुए मार्ग के अनुसार चलोगे तो भटकोगे नहीं। इसीलिए वेदव्यासजी महाराज ने कहा है : **एतत्सर्वं गुरोर्भक्त्या।**

गुरुजी की सेवा करते-करते वर्षों बीत गये। संदीपक की गुरुसेवा से प्रसन्न होकर एक दिन भगवान शंकर उसके आगे प्रगट हुए एवं बोले :

''संदीपक ! लोग तो काशीविश्वनाथ के दर्शन करने आते हैं लेकिन मैं तेरे पास बिना बुलाये आया हूँ क्योंकि जिनके हृदय में 'मैं' सोऽहं स्वरूप से प्रगट हुआ है ऐसे सद्गुरु की तू सेवा करता है। जिनके हृदय में ब्रह्म-परमात्मा प्रगट हुए हैं उनके तन की स्थिति बाहर से भले गंदी दिखती है, फिर भी उनमें चिन्मय तत्त्व जानकर तू उनकी सेवा करता है। मैं तुझ पर अत्यंत प्रसन्न हूँ। बेटा ! कुछ माँग ले।''

संदीपक : ''प्रभु ! बस, आपकी प्रसन्नता पर्याप्त है।''

शिवजी : ''प्रसन्न तो हूँ लेकिन कुछ माँग।''

संदीपक : ''बस, गुरु की कृपा पर्याप्त है।''

शिवजी : ''नहीं, संदीपक ! कुछ माँग ले। तेरी गुरुभक्ति देखकर मैं बिना बुलाये तेरे पास आया हूँ। मैं तुझ पर अत्यंत प्रसन्न हूँ। कुछ माँग ले।''

संदीपक : ''हे महादेव ! आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, यह मेरा परम सौभाग्य है लेकिन वरदान माँगने में मैं विवश हूँ। मेरे गुरुदेव की आज्ञा के बिना मैं आपसे कुछ नहीं माँग सकता।''

शिवजी : ''...तो तेरे गुरु के पास जाकर आज्ञा ले आ।''

संदीपक गया गुरु के पास एवं बोला :

''आपकी कृपा से शिवजी मुझ पर प्रसन्न हुए हैं एवं वरदान माँगने के लिये कह रहे हैं। अगर आपकी आज्ञा हो तो आपका कोढ़ एवं अंधत्व ठीक होने का वरदान माँग लूँ।''

यह सुनकर वेदधर्म बड़े कुपित हो गये एवं बोले :

''नालायक ! सेवा से बचना चाहता है ? दुष्ट ! मेरी सेवा करते-करते थक गया है इसलिये भीख माँगता है ? शिवजी दे-देकर क्या देंगे ? दे भी देंगे तो शरीर के लिये देंगे। प्रारब्ध शरीर भोगता है तो भोगने दे। क्यों भीख माँगता है शिवजी से ? जा, तू भी चला जा। मैं तो पहले ही तुझे मना कर रहा था फिर भी साथ आया।''

संदीपक गया शिवजी के पास और बोला : ''प्रभु ! मुझे क्षमा करो। मैं कोई वरदान नहीं चाहता।''

शिवजी संदीपक की गुरुनिष्ठा देखकर भीतर से बड़े प्रसन्न हुए लेकिन बाहर से बोले : ''ऐसे कैसे गुरु हैं कि शिष्य इतनी सेवा करता है और ऊपर से डाँटते हैं ?''

संदीपक : ''प्रभु ! आप चाहे जो कहें लेकिन मैंने भी सोच लिया है : **गुरुकृपा हि केवलम्... उनकी आज्ञा का पालन ही मेरा सर्वस्व है।''**

शिवजी गये भगवान विष्णु के पास एवं बातचीत के दौरान बोले : ''हे नारायण ! बड़े-बड़े मुनीश्वर मेरे दर्शन के लिये वर्षों तक जप-तप करते हैं फिर भी उन्हें दर्शन नहीं होते। अभी काशी नगरी में संदीपक नामक शिष्य की गुरुनिष्ठा देखकर मैं स्वयं उसके सामने प्रगट हुआ एवं इच्छित वरदान माँगने के लिये कहा किन्तु गुरु की आज्ञा न मिलने पर उसने वरदान के लिये स्पष्ट इन्कार कर दिया। मैंने उसकी परीक्षा ली कि : 'ऐसे गुरु का क्या चेला बनता है ?' ...लेकिन वह मेरी कसौटी पर भी खरा उतरा। मेरे हिलाने पर भी वह न हिला। गुरुद्वार की झाड़ू-बुहारी, भिक्षा माँगना, गुरु को नहलाना-खिलाना, गुरु की सेवा करना यही उसकी पूजा-उपासना है।''

शिवजी की बात सुनकर भगवान विष्णु को भी आश्चर्य हुआ एवं उन्हें भी संदीपक की परीक्षा लेने का मन हुआ।

संदीपक के पास प्रगट होकर भगवान विष्णु बोले :

''वत्स ! तेरी अनुपम गुरुभक्ति से मैं तुझ पर अत्यंत प्रसन्न हूँ। ...लेकिन एक बात का मुझे दुःख है। शिवजी को

भी दुःख हुआ। तूने शिवजी से वरदान नहीं लिया... गुरु के लिये भी नहीं लिया। अब अपने लिए ले ले। तेरी जो इच्छा हो, वह माँग ले।''

संदीपक : ''ना ना, प्रभु ! ऐसा न कहें।''

विष्णु : ''देवता आते हैं तो बिना वरदान दिये नहीं जाते। कुछ तो माँग लो !''

संदीपक : ''हे त्रिभुवनपति ! गुरुकृपा से तो मुझे आपके दर्शन हुए हैं। मैं आपसे केवल इतना ही वरदान माँगता हूँ कि गुरुचरणों में मेरी अविचल भक्ति बनी रहे एवं उनकी सेवा में मैं निरंतर लीन रहूँ।''

संदीपक की बात सुनकर विष्णु भगवान अत्यंत प्रसन्न हुए एवं बोले : ''वत्स ! तू सचमुच धन्य है ! तेरे गुरु भी धन्य हैं ! तुझे वरदान देता हूँ कि गुरुचरणों में तेरी भक्ति निरंतर दृढ़ होती रहेगी।''

ऐसा कहकर विष्णु भगवान अंतर्धान हो गये।

संदीपक गया गुरु के पास एवं विष्णु भगवान के दिये गये आशीर्वाद की बात विस्तारपूर्वक सुना दी। संदीपक की बात सुनकर वेदधर्म के आनंद का कोई पार न रहा। अपने प्रिय शिष्य को छाती से लगाकर बोले :

''बेटा ! तू सर्वश्रेष्ठ शिष्य है। तू समस्त सिद्धियों को प्राप्त करेगा। तेरे चित्त में ऋद्धि-सिद्धि का वास रहेगा।''

संदीपक : ''गुरुवर ! मेरी सभी रिद्धि-सिद्धियाँ आपके श्रीचरणों में समायी हुई हैं। मुझे आप नश्वर के मोह में न डालें। मुझे तो शाश्वत् आनंद की आवश्यकता है और वह तो आपके श्रीचरणों की भक्ति से मिलता ही है।''

वहीं संदीपक ने साश्चर्य देखा कि गुरुदेव का कोढ़ संपूर्णतः गायब है... उनका शरीर पूर्ववत् स्वस्थ एवं कांतिमान् हो गया है !

शिष्य को प्रेमपूर्वक गले लगाते हुए वेदधर्म ने कहा : ''बेटा ! शिष्यों की परीक्षा लेने के लिये ही मैंने यह सब खेल रचा था। मैं तुझ पर अत्यंत प्रसन्न हूँ। ब्रह्मविद्या का विशाल खजाना मैं तुझे आज देता हूँ।''

सत्‌शिष्य संदीपक की जन्म-जन्मांतरों की सेवा-साधना सफल हुई। गुरुदेव की कृपा से संदीपक परमात्मा के साथ एकाकार हो गया। धन्य है संदीपक की गुरुभक्ति !

(क्रमशः)

[कहीं-कहीं यह पावन कथा पाठान्तर भेद से भी आती है फिर भी संदीपक की दृढ़ गुरुभक्ति की प्रशंसा गोरखनाथजी ने अपने शिष्यों के समक्ष मुक्त कण्ठ से की है।]

'युवाधन सुरक्षा अभियान'

संत श्री आसारामजी आश्रम से **'योगयात्रा-४'** पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। इसमें साधकों के सत्य व दिव्य अनुभव, महामृत्युंजय मंत्र व सुहाग की रक्षावाली लेडी मार्टिन की कथा है जिसमें ईसाई महिला ने अपने सुहाग की रक्षा मंत्र के बल पर की थी। दूसरे भी कई साधकों के नये दिव्य अनुभव हैं। पाँच बार इसके पठन-मनन से नास्तिक भी आस्तिक तथा आस्तिक दृढ़ ज्ञान-ध्यान का प्रसाद पाने का अधिकारी हो जाता है।

ऐसे ही **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक से कई युवक व युवतियों का उलझा हुआ जीवन सुलझ गया, नष्ट होती जीवनशक्ति संयत हुई, स्मरणशक्ति एवं चरित्रबल बढ़ा, कार्यक्षमताएँ निखरीं। ऐसे युवक-युवतियाँ तो अनेक हैं जिन्हें **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक पढ़कर बहुत कुछ मिला है। दिल्ली के शेखरभाई को लाखों लोग जानते हैं। **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक पढ़ने से पहले उनका जीवन कितने विनाश की ओर जा रहा था और अब कैसे चमक रहा है !

इस बात को मद्देनजर रखते हुए संत श्री आसारामजी आश्रम व अखिल भारतीय योग वेदान्त सेवा समिति ने फैसला किया है कि **'योगयात्रा-४'** व **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक के प्रचार-प्रसार का देशव्यापी अभियान चलाया जाय।

सभी विद्यार्थियों तक ये पुस्तकें पहुँचे। सभी समितियाँ, भक्त एवं समाजसेवी संस्थाएँ इस **'युवाधन सुरक्षा अभियान'** में ऐसा ही उत्साह दिखायेंगे जैसा 'व्यसनमुक्ति अभियान' में दिखाया।

जो समितियाँ, समाजसेवी संस्थाएँ एवं भक्त गुरुपूर्णिमा के पर्व पर इन दोनों पुस्तकों का आर्डर लिखवाने की कृपा करेंगे उनको इन रियायती पुस्तकों में और भी रियायत दी जायेगी।

सैंकड़ों पादरी 'एड्स' से मरे

अंग्रेजी दैनिक 'टाइम्स ऑफ इण्डिया (३ फरवरी) में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार अमरीका के सैकड़ों रोमन कैथोलिक पादरी 'एड्स' के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। 'एड्स' एक ऐसी भीषण बीमारी है जिसका इलाज आज तक खोजा नहीं जा सका है। यह बीमारी दुराचार में लिप्त लोगों को ही होती है। इसलिये यह आश्चर्य का विषय है कि पवित्र जीवन (?) जीने का दावा करनेवाले पादरियों को यह गर्हित रोग कैसे लगा ? प्रकाशित समाचार के अनुसार अमरीका में 'एड्स' के शिकार रोगियों में तीन-चौथाई पादरी हैं।

एकादशी-माहात्म्य

[कामिका एकादशी : २७ जुलाई २०००]

युधिष्ठिर ने पूछा : ''गोविन्द ! वासुदेव ! आपको मेरा नमस्कार है ! श्रावण के कृष्णपक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ? कृपया उसका वर्णन कीजिये ।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''राजन् ! सुनो । मैं तुम्हें एक पापनाशक उपाख्यान सुनाता हूँ, जिसे पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने नारदजी के पूछने पर कहा था ।''

नारदजी ने प्रश्न किया : ''हे भगवन् ! हे कमलासन ! मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि श्रावण के कृष्णपक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है ? उसके कौन-से देवता हैं तथा उससे कौन-सा पुण्य होता है ? प्रभो ! यह सब बताइये ।''

ब्रह्माजी ने कहा : ''नारद ! सुनो । मैं सम्पूर्ण लोकों के हित की इच्छा से तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ । श्रावण मास में जो कृष्णपक्ष की एकादशी होती है, उसका नाम 'कामिका' है । उसके स्मरणमात्र से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है । उस दिन श्रीधर, हरि, विष्णु, माधव और मधुसूदन आदि नामों से भगवान का पूजन करना चाहिए ।

भगवान श्रीकृष्ण के पूजन से जो फल मिलता है, वह गंगा, काशी, नैमिषारण्य तथा पुष्कर क्षेत्र में भी सुलभ नहीं है । सिंहराशि के बृहस्पति होने पर तथा व्यतीपात और दण्डयोग में गोदावरी स्नान से जिस फल की प्राप्ति होती है, वही फल भगवान श्रीकृष्ण के पूजन से भी मिलता है।

जो समुद्र और वनसहित समूची पृथ्वी का दान करता है तथा जो कामिका एकादशी का व्रत करता है, वे दोनों समान फल के भागी माने गये हैं ।

जो ब्यायी हुई गाय को अन्यान्य सामग्रियोंसहित दान करता है, उस मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है, वही 'कामिका' एकादशी का व्रत करनेवाले को मिलता है । जो नरश्रेष्ठ श्रावण मास में भगवान श्रीधर का पूजन करता है, उसके द्वारा गन्धर्वों और नागोंसहित सम्पूर्ण देवताओं की पूजा हो जाती है ।

अतः पापभीरु मनुष्यों को यथाशक्ति पूरा प्रयत्न करके 'कामिका' एकादशी के दिन श्रीहरि का पूजन करना चाहिए । जो पापरूपी पंक से भरे हुए संसारसमुद्र में डूब रहे हैं, उनका उद्धार करने के लिये 'कामिका' एकादशी का व्रत सबसे उत्तम है । अध्यात्म-विद्यापरायण पुरुषों को जिस फल की प्राप्ति होती है, उससे बहुत अधिक फल 'कामिका' एकादशी व्रत का सेवन करनेवालों को मिलता है ।

'कामिका' एकादशी का व्रत करनेवाला मनुष्य रात्रि में जागरण करने से न तो कभी भयंकर यमदूत का दर्शन करता है और न कभी दुर्गति में ही पड़ता है ।

लाल मणि, मोती, वैदूर्य और मूँगे आदि से पूजित होकर भी भगवान विष्णु वैसे संतुष्ट नहीं होते, जैसे तुलसीदल से पूजित होने पर होते हैं । जिसने तुलसी की मंजरियों से श्रीकेशव का पूजन कर लिया है, उसके जन्मभर के पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं । जो दर्शन करने पर सारे पापसमुदाय का नाश कर देती है, स्पर्श करने पर शरीर को पवित्र बनाती है, प्रणाम करने पर रोगों का निवारण करती है, जल से सींचने पर यमराज को भी भय पहुँचाती है, आरोपित करने पर भगवान श्रीकृष्ण के समीप ले जाती है और भगवान के चरणों में चढ़ाने पर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसी देवी को नमस्कार है !

जो मनुष्य एकादशी को दिन-रात दीपदान करता है, उसके पुण्य की संख्या चित्रगुप्त भी नहीं जानते । एकादशी के दिन भगवान श्रीकृष्ण के सम्मुख जिसका दीपक जलता है, उसके पितर स्वर्गलोक में स्थित होकर अमृतपान से तृप्त होते हैं । घी अथवा तिल के तेल से भगवान के सामने दीपक जलाकर मनुष्य देह-त्याग के पश्चात् करोड़ों दीपकों से पूजित हो स्वर्गलोक में जाता है ।''

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : ''युधिष्ठिर ! यह तुम्हारे सामने मैंने 'कामिका' एकादशी की महिमा का वर्णन किया है । 'कामिका' सब पातकों को हरनेवाली है, अतः मानवों को इसका व्रत अवश्य करना चाहिए । यह स्वर्गलोक तथा महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाली है । जो मनुष्य श्रद्धा के साथ इसका माहात्म्य-श्रवण करता है, वह सब पापों से मुक्त हो श्रीविष्णु लोक में जाता है । ['पद्मपुराण' से]

करेला

वर्षा ऋतु में करेले बहुतायत से पाये जाते हैं। डायबिटीज, बुखार, आमवात एवं लिवर के मरीजों के लिए अत्यंत उपयोगी करेला सस्ती एवं लोकप्रिय सब्जी है।

आयुर्वेद के मतानुसार करेले पचने में हल्के, रुक्ष, स्वाद में कड़वे, पकने पर तीखे एवं उष्णवीर्य होते हैं। करेला रुचिकर, भूखवर्धक, पाचक, पित्तसारक, मूत्रल, कृमिहर, उत्तेजक, ज्वरनाशक, रक्तशोधक, सूजन मिटानेवाला, व्रण मिटानेवाला, दाहनाशक, आँखों के लिए हितकर, वेदना मिटानेवाला, मासिकधर्म का उत्पत्तिकर्त्ता, दूध शुद्ध करनेवाला, मेद (चर्बी), गुल्म (गाँठ), प्लीहा (तिल्ली), शूल, प्रमेह, पाण्डु, पित्तदोष एवं रक्तविकार को मिटानेवाला है। करेले कफ प्रकृतिवालों के लिए अधिक गुणकारी हैं। खांसी, श्वास एवं पीलिया में भी लाभदायक हैं। करेले के पत्तों का ज्यादा मात्रा में लिया गया रस वमन-विरेचन करवाता है जिससे पित्त का नाश होता है।

बुखार, सूजन, आमवात, वातरक्त, यकृत या प्लीहावृद्धि एवं त्वचा के रोगों में करेले की सब्जी लाभदायक होती है। चेचक-खसरे के प्रभाव से बचने के लिए भी प्रतिदिन करेले की सब्जी का सेवन करना लाभप्रद है। इसके अलावा अजीर्ण, मधुप्रमेह, शूल, कर्णरोग, शिरोरोग एवं कफ के रोगों आदि में मरीज की प्रकृति के अनुसार एवं दोष का विचार करके करेले की सब्जी देना लाभप्रद है।

अपने यहाँ करेले की सब्जी बनाते समय उसके ऊपरी हरे छिलके उतार लिये जाते हैं ताकि कड़वाहट कम हो जाये। फिर उसे काटकर, उसमें नमक मिलाकर, उसे निचोड़कर उसका कड़वा रस निकाल लिया जाता है और तब उसकी सब्जी बनायी जाती है। ऐसा करने से करेले के गुण बहुत कम हो जाते हैं। इसकी अपेक्षा कड़वाहट निकाले बिना, पानी डाले बिना, मात्र तेल में बघारकर (तड़का देकर अथवा छौंककर) बनायी गयी करेले की सब्जी परम पथ्य है। करेले के मौसम में इनका अधिक-से-अधिक उपयोग करके आरोग्य की रक्षा करनी चाहिए।

विशेष : करेले अधिक खाने से यदि उलटी या दस्त हुए हों तो उसके इलाज के तौर पर घी-भात-मिश्री खानी चाहिए। करेले का रस पीने की मात्रा १० से २० ग्राम है। उलटी करने के लिए रस पीने की मात्रा १०० ग्राम तक की है। करेले की सब्जी ५० से १५० ग्राम तक की मात्रा में खायी जा सकती है। करेले के फल, पत्ते, जड़ आदि सभी भाग औषधि के रूप में उपयोगी हैं।

* औषध-प्रयोग *

१. मलेरिया (विषम) ताव : करेले के ३-४ पत्तों को काली मिर्च के ३ दानों के साथ पीसकर दें तथा पत्तों का रस शरीर पर लगायें। इससे लाभ होता है।

२. बालक की उलटी : करेले के १ से ३ बीजों को एक-दो काली मिर्च के साथ पीसकर बालक को पिलाने से उलटी बंद होती है।

३. मधुप्रमेह (डायबिटीज) : कोमल करेले के टुकड़े काटकर, उन्हें छाया में सुखाकर बारीक पीसकर उनमें दसवाँ भाग काली मिर्च मिलाकर सुबह-शाम पानी के साथ ५ से १० ग्राम की मात्रा में प्रतिदिन लेने से मूत्रमार्ग से जानेवाली शक्कर में लाभ होता है। कोमल करेले का रस भी लाभकारक है।

४. यकृत (लिवर) वृद्धि : करेले का रस २० ग्राम, राई का चूर्ण ५ ग्राम, सैंधव नमक ३ ग्राम। इन सबको मिलाकर सुबह खाली पेट पीने से यकृतवृद्धि, आहार के अपचन एवं बारंबार शौच की प्रवृत्ति में लाभ होता है।

५. तलुओं में जलन : पैर के तलुओं में होनेवाली जलन में करेले का रस घिसने से लाभ होता है।

६. बालकों का अफारा : बच्चों के पेट के अफारे में करेले के पत्तों के पाव या आधा चम्मच रस में चुटकी भर हल्दी का चूर्ण मिलाकर पिलाने से बालक को उलटी हो जायेगी एवं पेट की वायु तथा अफारे में लाभ होगा।

७. हरस (मसे) : करेले के १० से २० ग्राम रस में ५ से १० ग्राम मिश्री रोज पिलाने से लाभ होता है।

८. मूत्राल्पता : जिनको पेशाब खुलकर न आता हो, उन्हें करेले अथवा उनके पत्तों के ३० से ५० ग्राम रस में आधा ग्राम हींग डालकर पिलाने से लाभ होता है। अथवा करेले के ३० ग्राम रस में दही का १५ ग्राम पानी मिलाकर

पिलाना चाहिए। ऊपर से ५० से ६० ग्राम छाछ पिलाएँ। ऐसा ३ दिन करें। फिर तीन दिन यह प्रयोग बंद कर दें एवं फिर से दूसरे ६ दिन तक लगातार करें तो लाभ होता है।

इस प्रयोग के दौरान छाछ एवं खिचड़ी ही खायें।

९. अम्लपित्त : करेले एवं उसके पत्ते के ५ से १० ग्राम चूर्ण में मिश्री मिलाकर घी अथवा पानी के साथ लेने से लाभ होता है।

१०. वीर्यदोष : करेले का रस ५० ग्राम, नागरबेल के पत्तों का रस २५ ग्राम, चंदन चूर्ण १० ग्राम, गिलोय का चूर्ण १० ग्राम, असगंध (अश्वगंधा) का चूर्ण १० ग्राम, शतावरी का चूर्ण १० ग्राम, गोखरू का चूर्ण १० ग्राम एवं मिश्री १०० ग्राम लें। पहले करेले एवं नागरबेल के पान के रस को गर्म करें। फिर बाकी की सभी दवाओं के चूर्ण में उसे डालकर घिस लें एवं आधे-आधे ग्राम की गोलियाँ बनाएँ। सुबह में दूध पीते समय खाली पेट पाँच गोलियाँ लें। २१ दिन के प्रयोग से पुरुष की वीर्यधातु में वृद्धि होती है एवं शरीर में ताकत बढ़ती है।

११. सूजन : करेले को पीसकर सूजनवाले अंग पर उसका लेप करने से सूजन उतर जाती है। गले की सूजन में करेले की लुगदी को गरम करके लेप करें।

१२. कृमि : पेट में कृमि हो जाने पर करेले के रस में चुटकी भर हींग डालकर पीने से लाभ होता है।

१३ जलने पर : आग से जले हुए घाव पर करेले का रस लगाने से लाभ होता है।

१४. रतौंधी : करेले के पत्तों के रस में लेंडीपीपर घिसकर आँखों में आँजने से लाभ होता है।

१५. पाण्डुरोग (रक्ताल्पता) : करेले के पत्तों का २-२ चम्मच रस सुबह-शाम देने से पाण्डुरोग में लाभ होता है।

सावधानी

जिन्हें आँव की तकलीफ हो, पाचनशक्ति कमजोर हो, दस्त में रक्त आता हो, बार-बार मुँह में छाले पड़ते हों, जो दुर्बल प्रकृति के हों उन्हें करेले का सेवन नहीं करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में, पित्तप्रकोप की ऋतु कार्तिक मास में करेले का सेवन नहीं करना चाहिए।

कार्तिक में करेला खाय, मरे नहीं तो मर्ज आय।

करेले के सेवन के ३ घण्टे बाद दूध, घी, मक्खन जैसे पौषक खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

वर्षा ऋतु में तुलसी लगाएँ... रोग भगाएँ

तुलसी एक सर्वपरिचित वनस्पति है। किसी भी स्थान पर उगनेवाली तुलसी का भारतीय धर्म एवं संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान है। मात्र भारत में ही नहीं वरन् विश्व के अनेक अन्य देशों में भी तुलसी को पूजनीय एवं शुभ माना जाता है।

प्रदूषित वायु के शुद्धीकरण में तुलसी का योगदान सर्वाधिक है। तिरुपति के एस. वी. विश्वविद्यालय में किये गये एक अध्ययन के अनुसार तुलसी का पौधा उच्छ्वास में स्फूर्तिप्रद ओजोनवायु छोड़ता है जिसमें ऑक्सीजन के दो के स्थान पर तीन परमाणु होते हैं।

यदि तुलसीवन के साथ प्राकृतिक चिकित्सा की कुछ पद्धतियाँ जोड़ दी जायँ तो प्राणघातक और दुःसाध्य रोगों को भी निर्मूल करने में ऐसी सफलताएँ मिल सकती हैं जो प्रसिद्ध डॉक्टरों व सर्जनों को भी नहीं मिल सकतीं।

इस प्रकार तुलसी बहुत ही महत्त्वपूर्ण वनस्पति है। हमें चाहिए कि हम लोग तुलसी का पूर्ण लाभ लें। अपने घर के ऐसे स्थान में जहाँ सूर्य का निरन्तर प्रकाश उपलब्ध हो तुलसी के पौधे अवश्य लगाने चाहिए। तुलसी के पौधे लगाने अथवा बीजारोपण के लिए वर्षाकाल का समय उपयुक्त माना गया है। अतः इस वर्षाकाल में अपने घरों में तुलसी के पौधे लगाकर अपने घर को प्रदूषण तथा अनेक प्रकार की बीमारियों से बचायें तथा पास-पड़ोस के लोगों को भी इस कार्य हेतु प्रोत्साहित करें।

नोट : अपने निकटवर्ती संत श्री आसारामजी आश्रम से पर्यावरण की शुद्धि हेतु तुलसी के पौधे व बीज निःशुल्क प्राप्त किये जा सकते हैं।

[साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।]

अनुभवी वैद्यों की नियुक्ति हेतु...

आश्रम के आयुर्वेदिक औषध निर्माण व तमाम उपचार केन्द्रों को सँभाल सके, यश पचा सके, जिनको यश का अजीर्ण न हो, समाज, मरीजों, भक्तों एवं संस्था के साथ जो गद्दारी न करे ऐसे दो सुशील, संयमी, अनुभवी वैद्यों की आवश्यकता है। उचित वेतन-व्यवस्था दी जायेगी। अपने प्रमाणपत्र लेकर १८ जुलाई को अमदावाद आश्रम में पूज्य बापू के समक्ष वैद्यों को मिलने का अवसर आयोजित किया गया है। निष्ठावान् वैद्य मिलने पर, सच्चाई से सेवा-निष्ठावाले वैद्य मिलने पर एक बड़ा आयुर्वेदिक अस्पताल खोलने का विचार है। जो भी इस दैवी कार्य में भागीदार होना चाहें वैसे वैद्य साधक आमंत्रित हैं।

संपर्क स्थल : संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५. फोन : (०७९) ७५०५०१०-११.

देहरादून (उ. प्र.) : ३ और ४ जून। द्रोणनगरी देहरादून के निकट सहस्रधारा मार्ग डांडाधोरण में नवनिर्मित संत श्री आसारामजी आश्रम का उद्घाटन पूज्य गुरुजी के करकमलों से संपन्न हुआ। दर्शन-सत्संग के पिपासु भक्तों के भावों को स्वीकार करते हुए बापूजी टिहरी से देहरादून पधारे। यहाँ इन्द्रदेव की अठखेलियाँ तो देखने को मिलीं, सूर्यनारायण की आँखमिचौनी भी। अन्य समय तो वर्षा और तूफान से इन्द्रदेव अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते थे और सूर्यदेव छिप जाते थे, पर सत्संग के समय सूर्यदेव प्रकट हो जाते थे, वर्षा थम जाती थी, तूफान बंद हो जाते थे। लोग प्रकृति की यह लीला और सेवा साश्चर्य देख रहे थे, आनंदित हो रहे थे।

दो दिवसीय प्रवचन के दौरान भावविभोर श्रद्धालुओं को संबोधित करते हुए पूज्यश्री ने कहा कि : **''जिस धरती पर सत्संग-कीर्तन होता है वहाँ विशेष प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। सात्त्विक तरंगों से भूमि और वातावरण अभिभूत हो उठते हैं।''**

स्थानीय भक्तों एवं समिति ने प्रत्येक रविवार व पूनम को सत्संग-कीर्तन आयोजन करने की कटिबद्धता जताई।

मुजफ्फरनगर (उ. प्र.) : ७ से ९ जून। गंगाद्वार हरिद्वार में दो दिन के एकान्तवास के पश्चात् बापूजी रुड़की रोड स्थित 'मुजफ्फरनगर आश्रम' पधारे। 'नवनिर्मित सत्संग-भवन एवं शिवसाधना कुटीर' का उद्घाटन पूज्यश्री के करकमलों से हुआ। त्रिदिवसीय सत्संग-प्रवचन में योगनिष्ठ बापूजी द्वारा ध्यान के गहरे प्रयोग भी कराये गये। भूत-भविष्य की चिन्ता छोड़कर वर्त्तमान को सँवारने की प्रेरणा देते हुए गुरुदेवश्री ने कहा कि : **''कल कभी कल होकर नहीं आता। वह जब भी आता है वर्त्तमान होकर, आज होकर ही आता है। अतः वर्त्तमान में ही जियो। भूतकाल को याद करने से आदमी पीठ के बल गिरता है और भविष्य की चिंता करने से मुँह के बल गिरता है। तुम तो वर्त्तमान में रहो।''**

मुजफ्फरनगर में पूज्यश्री के पधारने के पहले करीब तीन दिन से लगातार बारिश हो रही थी। पूज्यश्री के वहाँ पधारते ही वर्षा थम गई और सत्संग के दौरान इन्द्रदेव ने पूरा सम्मान देते हुए वर्षा पर नियंत्रण रखा। ब्रह्मज्ञानी महात्मा के सत्संग में देवी-देवता भी सहयोग प्रदान करके अपना भाग्य बना लेते हैं इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण यहाँ की जनता को देखने को मिला।

मेरठ (उ. प्र.) : १० जून को सत्संग-प्रवचन संपन्न हुआ। मोदी रबर परिसर में हेलीकॉप्टर उतरा। पूज्यश्री के आने की खबर हवा की तरह चहुँओर फैल गई। बड़ी संख्या में साधक-समुदाय एकत्रित हुआ। धर्मान्तरण से सावधान रहने की अपील करते हुए ब्रह्मनिष्ठ बापूजी ने कहा कि : **''धर्मान्तरण के माध्यम से भारत को टुकड़े-टुकड़े करने का षड्यंत्र किया जा रहा है।''**

हिन्दू धर्म के सनातनत्व का जिक्र करते हुए गुरुदेव ने कहा कि : **''हिन्दू धर्म अपने-आपमें पूर्ण है। इसे किसी संत, अवतार आदि ने स्थापित नहीं किया। यह सनातन है। इसमें सबसे अधिक हित की प्रधानता है।''**

आत्मबल बढ़ाने की व्यावहारिक युक्ति बताते हुए बापूजी ने कहा कि : **''भले कार्यों से आत्मबल बढ़ता है और बुरे कार्यों से उसका ह्रास होता है।''** सत्संग के पश्चात् पूज्यश्री हेलीकॉप्टर से अलीगढ़ के लिए रवाना हुए।

अलीगढ़ (उ. प्र.) : १० जून। धनीपुर हवाई अड्डे पर हजारों आँखें आकाश की ओर लगी थीं। सभी को हेलीकॉप्टर के आने का इंतजार था। अंततः प्रतीक्षा की घड़ियाँ समाप्त हुईं। हेलीकॉप्टर के उतरते ही क्रॉस लाइन के आगे जनसैलाब उमड़ पड़ा। गुलाब की मालाएँ हाथ में लिये हुए लोग जय-जयकार के साथ पूज्य गुरुदेवश्री का अभिवादन कर रहे थे।

कुछ लोग धूप से तपते फर्श पर दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे। पूज्यश्री यहाँ पहली बार पधारे थे। वे मुकुंदपुर होते हुए करसुआ गाँव पहुँचे। वहाँ एकत्रित भक्तगण सत्संग-प्रवचन से लाभान्वित हुए। फिर आई. टी. आई. रोड स्थित अलीगढ़ प्रदर्शनी मैदान के निकट निर्मित सत्संग पाण्डाल में पूज्यश्री पहुँचे जहाँ बड़ी संख्या में साधकवृंद श्रद्धा-सुमन साथ लिए उनके दर्शन-सत्संग की बाट जोह रहे थे। प्रवचन के दौरान बापूजी ने कहा कि : ''अभी तो यहाँ से गुजरते हुए आपके प्रेम ने कुछ मिनटों के लिए इतना बड़ा आयोजन करके थाम ही लिया। ईश्वर ने चाहा तो आपकी इस अत्यंत श्रद्धा-भक्ति के फलस्वरूप कोई सत्संग कार्यक्रम मिल जायेगा तब विधिवत् ३-४ दिन यहाँ रहेंगे।'' बापूजी के दर्शन पाकर भक्त समुदाय भावविभोर हो उठा। वहाँ के भक्तों ने कहा :

आज गगन कुछ मुस्कराया है, धरा कुछ थरथराई है।
अजब उल्लास की यह, घड़ी आज आई है॥

रेवाड़ी (हरियाणा) : १० से १३ जून। १० जून की शाम पूज्यश्री अलीगढ़ से रेवाड़ी पहुँचे। नवनिर्मित संत श्री आसारामजी आश्रम, कमालपुर का उद्घाटन व चार दिवसीय 'गीता भागवत सत्संग' संपन्न हुआ। नई अनाजमंडी के निकट कंटेनर डिपो पर निर्मित विशाल सत्संग-प्रांगण में दिल्ली, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा आदि प्रान्तों के पूनमव्रतधारी साधकों ने १३ जून को दर्शन-सत्संग प्राप्त कर अपना व्रत पूर्ण किया। योगनिष्ठ बापूजी ने विशाल जनसमुदाय को सूत्रात्मक संदेश देते हुए कहा कि : **''विकारों की पूँछ पकड़कर जो जीते हैं वे बेहाल हो जाते हैं और विकारों के सिर पर पैर रखकर जो जीते हैं वे निहाल हो जाते हैं। संसार की आसक्ति में डूब मरने के लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है, अन्तरात्मा में गोता मारकर**

मनुष्य-जन्म सार्थक करने के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है भैया !''

❊ रेवाड़ी का प्राचीन इतिहास ❊

यह नगरी महाभारतकालीन राजा रेवत द्वारा बसाई गई थी। उन्होंने अपनी बेटी रेवती, जिसे परिवारजन प्यार से 'रेवा' कहकर पुकारते थे, के नाम पर इसका नाम 'रेवावाड़ी' रखा था। कालान्तर में यही 'रेवावाड़ी' संक्षिप्त होकर 'रेवाड़ी' हो गया। रेवती का विवाह भगवान श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम से हुआ जो बाद में 'रेवतीरमन' भी कहलाये। इस प्रकार उपरोक्त विवाह के दौरान भगवान श्रीकृष्ण के पावन चरण भी रेवाड़ी की पुण्यभूमि पर पड़े।

गौसेवा के क्षेत्र में एक और सराहनीय कदम
निवाई में 'संत श्री आसारामजी गौशाला' का उद्घाटन

सुसनेर में संचालित 'संत श्री आसारामजी गौ सेवाश्रम' के बाद गौसेवा के क्षेत्र में एक और सराहनीय कदम उठाते हुए निवाई (राज.) में बाईपास रोड पर **'संत श्री आसारामजी गौशाला (टोंक)'** का निर्माण किया गया है। इस गौशाला का उद्घाटन बुधवार १४ जून २००० को पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के पावन सान्निध्य में राजस्थान के माननीय मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत ने किया। इस अवसर पर समाज कल्याण मंत्री श्री बनवारीलाल बैरवा के साथ उनके अन्य साथी मंत्री भी संतश्री के दर्शन-सत्संग व आशीर्वचन के लिए जनसमूह के साथ उपस्थित थे। १४६० गोधन के आश्रयस्थल उक्त गौशाला का निरीक्षण व निर्देशन पूज्यश्री ने किया।

इस गौशाला के शुभारंभ की कहानी भी बड़ी रोचक एवं शिक्षाप्रद है। राजस्थान में पड़े भीषण अकाल के कारण लगभग डेढ़ हजार गायें कत्लखाने ले जायी जा रही थीं। वहाँ के साधकों को जब इस बात की जानकारी मिली तो उन्होंने चारा-पानी न मिलने के कारण जर्जर बनी गायों को हत्यारों के चँगुल से छुड़ाया तथा उनकी सेवा के लिए एक गौशाला का शुभारंभ किया। यहाँ पर उन्हें उचित चारा-पानी तथा आवश्यकता पड़ने पर चिकित्सा-सुविधा भी उपलब्ध करायी गयी। साधकों द्वारा प्रेमपूर्वक की गयी इस निःस्वार्थ सेवा के फलस्वरूप यहाँ पर एक भव्य गौशाला का निर्माण हुआ।

गौशाला के उद्घाटन के दौरान मुख्यमंत्री श्री गहलोत ने कहा : **''राज्य में भीषण अकाल पड़ा हुआ है। करोड़ों लोग तथा पशु इसकी चपेट में आये हैं। ऐसी परिस्थिति में पूज्य बापू की कृपा से यहाँ पर गौशाला खोलकर एक उत्कृष्ट कार्य किया गया है। अकाल की ऐसी भीषण स्थिति से निपटने के लिए 'संत श्री आसारामजी आश्रम' की तरह अन्य सामाजिक संस्थाओं को भी आगे आना चाहिए।''**

मुख्यमंत्री श्री गहलोत ने माल्यार्पण कर पूज्य बापू का स्वागत किया। तत्पश्चात् 'जहाँ दीपक वहाँ प्रकाश, जहाँ चन्द्रमा वहाँ चाँदनी, जहाँ बर्फ वहाँ शीतलता एवं जहाँ संत वहाँ सत्संग' इस सनातन नियम के अनुसार पूज्यश्री ने वहाँ उपस्थित विशाल जनमेदनी को पावन सत्संग-गंगा में स्नान कराया। हरिनाम कीर्तन से भक्तों को झुमाकर लगभग एक घंटे बाद पूज्यश्री ने अजमेर में आयोजित होनेवाले सत्संग कार्यक्रम के लिए प्रस्थान किया।

अजमेर (राज.) : १५ से १८ जून। राजा अजय की नगरी अजमेर के पटेल मैदान में ४ दिवसीय 'गीता भागवत सत्संग' संपन्न हुआ। सत्संग-प्रेमियों की भीड़ प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। अंतिम दिन कुंभ-सा दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा था। १६ जून को देश के विभिन्न क्षेत्रों से आये हुए पूनमव्रतधारी साधक-साधिकाओं ने दर्शन-सत्संग प्राप्त कर प्रसाद ग्रहण किया।

ब्यावर (राज.) : २२ जून। पुष्कर-नाथद्वारा मार्ग पर ब्यावर में पूज्यपाद बापूजी के दर्शन-सत्संग-कीर्तन की त्रिवेणी में अवगाहन कर स्थानीय समिति व साधक-समुदाय लाभान्वित हुए।

पूज्य बापू के सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	समय	स्थान	संपर्क फोन
७ से ९ जुलाई	दिल्ली	गुरुपूर्णिमा महोत्सव	सुबह ९ से ११ शाम ४ से ६	जापानी गार्डन, रोहिणी, सेक्टर-११, दिल्ली।	७०२५१२५, ६२२६११०, ५४६२१६२, ७८६५०९१, ५७२९३३८, ५७६४१६१.
११ से १३ जुलाई (दोपहर तक)	भोपाल	गुरुपूर्णिमा महोत्सव	सुबह १० से १२ शाम ४ से ६	संत श्री आसारामजी आश्रम, बायपास रोड, गाँधीनगर, भोपाल।	(०७५५) ७४२५००, ७४२५९९.
१५ से १७ जुलाई	अमदावाद	गुरुपूर्णिमा महोत्सव		संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५.	(०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

आवश्यक सूचना : अमदावाद आश्रम में गुरुपूर्णिमा महोत्सव के दौरान दिनांक १६ जुलाई को शाम ५-२७ से रात्रि ९-२४ तक चंद्रग्रहण का योग है। अतः १६ जुलाई को दोपहर ११ बजे तक ही भोजन एवं प्रसाद की व्यवस्था रहेगी। दर्शन-सत्संग का लाभ ग्रहण के दौरान भी मिलता रहेगा। भंडारा करनेवाली सभी समितियाँ भी यह ध्यान में रखें।

पूर्णिमा दर्शन : १४ व १५ अगस्त २००० रक्षाबंधन। बिलगाम-वड़ोदरा आश्रम में संभावित।

HL29411 5540770 91/33070 LIFE
CHAMPA W/O I.S. DHAIYA DEVI
54-A, ADARSH NAGAR,
PANIPAT 132103

॥ सद्गुरु-महिमा ॥

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥

- संत तुलसीदासजी

हरिहर आदिक जगत में पूज्यदेव जो कोय। सद्गुरु की पूजा किये सबकी पूजा होय॥

- निश्चलदासजी महाराज

सहजो कारज संसार को गुरु बिन होत नाँही। हरि तो गुरु बिन क्या मिले, समझ ले मन माँही॥

- संत कबीरजी

संत सरनि जो जनु परै सो जनु उधरनहार॥ संत की निंदा नानका बहुरि बहुरि अवतार॥

- गुरु नानक देवजी

* गुरुसेवा सब भाग्यों की जन्मभूमि है और वह शोकाकुल लोगों को ब्रह्ममय कर देती है। गुरुरूपी सूर्य अविद्यारूपी रात्रि का नाश करता है और ज्ञानाज्ञानरूपी सितारों का लोप करके बुद्धिमानों को आत्मबोध का सुदिन दिखाता है। *- संत ज्ञानेश्वर महाराज*
* सत्य के कंटकमय मार्ग में आपको गुरु के सिवाय और कोई मार्गदर्शन नहीं दे सकता। *- स्वामी शिवानंद सरस्वती*
* कितने ही राजे-महाराजे हो गये और होंगे, सायुज्य मुक्ति कोई नहीं दे सकता। सच्चे राजे-महाराजे तो संत ही हैं। जो उनकी शरण गया है वही सच्चा सुख और सायुज्य मुक्ति पाता है। *- समर्थ श्री रामदास स्वामी*
* मनुष्य चाहे कितना भी जप-तप करे, यम-नियमों का पालन करे परंतु जब तक सद्गुरु की कृपादृष्टि नहीं मिलती तब तक सब व्यर्थ है। *- स्वामी रामतीर्थ*
* प्लेटो कहते हैं कि : 'सुकरात जैसे गुरु पाकर मैं धन्य हुआ।'
* इमर्सन ने अपने गुरु थोरो से जो प्राप्त किया उसके महिमागान में भावविभोर हो जाते।
* रामकृष्ण परमहंस पूर्णता का अनुभव करानेवाले अपने सद्गुरुदेव की प्रशंसा करते नहीं अघाते।
* पूज्यपाद लीलाशाहजी महाराज भी अपने गुरु की याद में स्नेह के आँसू बहाकर गद्गद्कण्ठ हो जाते।
* अपने पूज्य बापूजी भी अपने गुरुदेव की याद में कैसे हो जाते हैं यह तो देखते ही बनता है। अब हम उनकी याद में कैसे होते हैं यह प्रश्न है। बहिर्मुख निगुरे कुछ भी कहें, साधक को अपने सद्गुरु से क्या मिलता है इसे तो साधक ही जानते हैं।